हैदराबाद (दक्षिण) के

चार-शास्त्रार्थ

सम्पादक—

हरिनारायणशर्म्मा

हैदराबाद (दक्षिण) के-

चार-शास्त्रार्थ

सम्पादक और प्रकाशक-

हरिनारायण शर्म्मा (सारस्वत-ओझा)

मन्त्री- श्री सनातनधर्म्मसभा, बेगमबाज़ार

(हैदराबाद दक्षिण)

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयोभूति र्ध्रुवानीति र्मतिर्मम ॥ (गीता)

पुस्तक मिलने का पता—

श्री सनातनधर्म्म सभा कार्य्यालय

बेगम बाज़ार हैदराबाद दक्षिण

प्रथमवार २००० } विजयदशमी सं० १९९३ { मूल्य ।=) विदेश से १ शि०

पं० प्यारेलाल शास्त्री के प्रबन्ध से
धर्म प्रेस मेरठ में मुद्रित ।

विषय-सूची

उद्देश्य-

श्री सनातनधर्मसभा बेगम बाज़ार हैदराबाद दक्षिण

——:o:——

(क) वेद, धर्मशास्त्र और पुराण प्रतिपादित अनादि काल से प्रचलित सनातनधर्म्म की हर प्रकार से उन्नति करना और सब तरह की विपत्ति से उसको बचाना।

(ख) इस धर्म पर यदि किसी प्रकार से आक्रमण हो तो शान्ति के साथ तन मन और धन से इसकी रक्षा करना।

(ग) सनातनधर्म की तदीय शास्त्रानुकूल अनादिमर्यादा को स्थिर रखने के लिये सब प्रकार के कष्टों को सहते हुवे सर्वदा तत्पर रहना, और धन संग्रह होने पर मासिक, साप्ताहिक, तथा दैनिक पत्रों का अनुकूल भाषा में प्रकाशन करना।

(घ) वर्णाश्रमानुकूल सनातनधर्म की रक्षा एवं सिद्धान्त प्रचार के लिये प्रान्तीय संस्थाओं के साथ सहयोग रखना, और यथाशक्ति सहायता करते रहना।

(ङ) देशवासियों की आपत्काल में सेवा के लिये सदा प्रयत्न करना।

(च) गोमाता अनाथ बालक बालिका स्त्री पुरुष तथा दीन दुःखी दरिद्रों की सेवा को अपना धर्म मान कर सदा इसमें उद्योगशील रहना।

(छ) ऊपर लिखे उद्देश्यों की पूर्ण या आंशिक पूर्त्ति के लिये आवश्यकतानुसार शान्तिरक्षा के साथ उचित कार्य करते रहना।

वर्तमान कार्य्यकर्ता-

वर्तमान समय में सभा की ओर से स्थायी प्रचारक- पं० नित्यानन्द जी व्या० सा० शास्त्री धर्म शास्त्राचार्य्य हैं और पदाधिकारी तथा कार्यकारिणी के सदस्य निम्नलिखित हैं।

नाम पदाधिकारीः-

१ श्रीमान् सेठ हरनाथ जी राठी सभापति।
२ श्रीमान् रायगणपतलाल साहब एडवोकेट, उपसभापति।
३ श्रीमान् पं० हरिनारायण जी शर्मा (सारस्वत ओझा) मंत्री।
४ श्रीमान् सेठ नरोत्तमदास जी उपमंत्री।
५ श्रीमान् सेठ गोवर्द्धनदास जी कोषाध्यक्ष।
६ श्रीमान् विट्ठलदास जी बी० ए० आय व्यय परीक्षक।
७ श्रीमान् पं० लक्ष्मीनारायण जी शर्मा (सारस्वत ओझा) व्यवस्थापक।

कार्यकारिणी के सदस्य-

१ श्रीमान् सेठ मुकुन्ददास जी मूंधड़ा
२ श्रीमान् सेठ कन्हैयालाल जी पीती
३ श्रीमान् स्वामी कृष्णाचार्य्य जी वैद्य
४ श्रीमान् ठाकुर पर्वतसिंह जी गौर
५ श्रीमान् पं० वैद्यनाथ जी अय्यर बी० ए० बी० एल०
६ श्रीमान् पं० सत्यनारायण प्रसाद जी मिश्र
७ श्रीमान् पं० नागभूषण जी शास्त्री
८ श्रीमान् पं० गिरिधारीलाल जी व्यास वकील हाईकोर्ट
९ श्रीमान् पं० रामचन्द्र रावजी वकील हाईकोर्ट
१० श्रीमान् सेठ दव्वड़ धूमैया जी
११ श्रीमान् पं० देवीप्रसाद जी मिश्र बी० ए० एल० एल० बी०

ॐ

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

हैदराबाद (दक्षिण) के चार शास्त्रार्थ

अर्थात्

('पुराण—दिग्दर्शन' रत्न-मालायाश्चतुर्थं रत्नम्)



सुवर्ण-संघट्ट-परिष्कृतो, महा—
पुराण-हृद्यो, विनियोगिकामदः ।
प्रतीक-पूर्णोऽस्तु तुरीयसंज्ञकः—
सकौस्तुभो मे भविकाय भूयसे ॥१॥

विष्णुपक्षे— सुवर्णानां = शोभनानामकाराद्यक्षराणां, संघट्टे=विश्वस्मिन् वाङ्मये, परिष्कृतः = सम्यग्वर्णितः । महांश्चासौ पुराणः स चासौ हृद्यश्चेति तादृशः = अनादि मनोहरः । विशेषेण निश्शेषतया च योगिनां = चित्तवृत्ति-निरोध-निष्ठानां, कामं=अभिमतं ददातीति तथा भूतः । प्रतीके=तत्तन्नामरूपात्मके वस्तुनि पूर्णः = व्यापकः । तुरीया = समाश्रितत्वेन प्रसिद्धा अवस्था संज्ञा यस्य तथा । कौस्तुभाख्यमणिना सह वर्तमानो भगवान् विष्णुर्ममातिशयाय कल्याणाय भवतु ।

ग्रन्थ-पक्षे—सुवर्णाः=सुष्ठुवर्णा ब्राह्मणादयस्तेषां संघट्टे व्यवस्थापनविधौ परिष्कारोऽस्य सञ्जातस्तथाविधः [एतेन वर्णव्यवस्थात्मकः प्रथमः शास्त्रार्थो ध्वनितः] महापुराणानां ब्राह्मादीनां वर्णनेन हृद्यः सुमनोहरः (शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपः) [एतेन पुराणविषयको द्वितीयः शास्त्रार्थो ध्वनितः] नियोगो मन्वादिधर्म्मशास्त्रनिषिद्धः पशुधर्म्मः स विशेषेण येषामस्तीति ते विनियोगिनो दयानन्दमतावलम्बिन स्तेषां कामं विजयाभिलाषं द्यति = खण्डयतीति तथाभूतः [एतेन दयानन्दकृतग्रन्थानां वेदविरुद्धत्वप्रतिपादकस्तृतीयः शास्त्रार्थोऽभिहितः] प्रतीकस्य=पाषाणादिनिर्मितभगवद्विग्रहस्य वर्णनेन पूर्णः=समाप्तिगतः [एतेन मूर्तिपूजाविषयकश्चतुर्थः शास्त्रार्थो ध्वनितः] ('पुराण-दिग्दर्शन' रत्नमालायाः) तुरीयसंज्ञकश्चतुर्थरत्नभूतः स एष कौस्तुभो ग्रन्थमणिर्मम श्रेयसे भवतु ।

रत्नपक्षे—सुवर्णस्य=हाटकस्य, संघट्टेषु परिकल्पितेषु कटककुण्डलादि भूषणेषु, परिष्कृतोन्यस्तः । महांश्चासौ अपुराणो नवीनश्चेति तादृग् इव हृद्यः=स्पृहणीयः । विनियोगिनां=रत्नविन्यासपटूनां शिल्पिनां [आजीविकाप्रदानेन] कामद इष्टफलदाता । प्रतीकेषु=भूषणगतेषु, पूर्णः सम्यङ् निहितः । [भौमदिव्यौदर्य्याकरजाख्येषु तेजसोभेदेषु] तुरीया चतुर्थी [आकरजाख्या] संज्ञा यस्य तथाविधोमणिर्मम भद्राय भवतु ॥

शास्त्रार्थ क्यों ठना ?

श्री सनातनधर्म्म सभा हैदराबाद (दक्खन) उन इनी गिनी सभाओं में से एक है जो कि निरन्तर धर्म्म प्रचार द्वारा विरोधियों के भ्रामक प्रोपगण्डे का विष दूर करना अपना परम कर्तव्य समझती हैं। साधारणतया निज़ाम राज्य भर में और विशेषतया हैदराबाद नगर में उक्त सभा के उपदेशकों के व्याख्यानों का सिलसिला प्रायः निरन्तर चालू रहता है। चुनाचे संवत् १९९२ वैशाख कृष्ण में स्थानीय लाल दर्वाजा के सनातन धर्म्मी बन्धुओं के अनुरोध से श्री पं० नागभूषण जी शास्त्री के तत्वावधान में उक्त सभा के महोपदेशक श्री पं० नित्यानन्द जी शास्त्री धर्म्मशास्त्राचार्य्य के व्याख्यान होरहे थे जिनके प्रभाव को न सह कर अपनी आदत के अनुसार स्थानीय आर्य्य समाजियों ने राज कर्म्मचारियों से झूठी सच्ची शिकायत करके व्याख्यानों के बन्द कराने का अनुचित एवं असफल प्रयत्न किया, जब इस प्रयत्न का कुछ भी परिणाम न हुवा तो गन्दी और आपत्ति जनक नोटिस बाज़ी के ओछे हथियारों पर उतर आए। सभा ने हिन्दू हितों को ध्यान में रखते हुवे समाज के कई नोटिसों को उपेक्षा पूर्वक गन्दी नाली में फैंक दिया और समाज को काफ़ी मौक़ा दिया कि वह अपनी इस बेढंगी रफ़्तार को छोड़दे परन्तु जब समाजियों ने हमारी इस शान्तिप्रियता से अनुचित लाभ उठाना चाहा और सर्वसाधारण में तरह तरह की

ग़लतफ़हमी फैलानी आरम्भ करदी तो अगत्या स० ध० सभा को समाज का चेलेञ्ज स्वीकार करके शास्त्रार्थ की घोषणा करनी पड़ी। अन्त में दोनों संस्थाओं के पत्र व्यवहार द्वारा उभयपक्ष की सम्मति से नीचे लिखे नियमों के अनुसार शास्त्रार्थ होना सुनिश्चित होगया—

शास्त्रार्थ के नियमोपनियम—

श्री सनातनधर्म्म सभा बेगम बाज़ार और आर्यसमाज सुलतान बाज़ार से जो शास्त्रार्थ ता० ३–७–३५ को निश्चित हुवा है उसकी नियमावली निम्न प्रकार है।

[१] (१) पुराण वेदविरुद्ध और परस्पर विरुद्ध होने से अमान्य हैं।

(२) यज्ञ में पशुवध वेदविरुद्ध है।

(३) मूर्त्तिपूजा वेदानुकूल नहीं है।

(४) ईश्वरावतार वेदानुकूल नहीं हैं।

[२] सनातनधर्म्म सभा की ओर से विषय—

(१) स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ अवैदिक कपोल-कल्पित हैं।

(२) दयानन्दकृत वेदभाष्य कल्पादि ग्रन्थों के अनुकूल नहीं हैं।

(३) नियोग अवैदिक है।

(४) वर्णव्यवस्था जन्म से है।

[३] आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले पण्डितों की नामावली।

(१) पं० लोकनाथ जी
(२) पं० देवेन्द्रनाथ जी
(३) पं० बुद्धदेव जी
(४) पं० मनसाराम जी
(५) स्वामी कर्मानन्द जी

[४] सनातनधर्म्म सभा की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले पण्डितों की नामावली।

(१) महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा
(२) पं० जगत्प्रसाद जी शास्त्री इन्तखाबे हिन्द
(३) पं० अखिलानन्द जी कविरत्न
(४) शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्य्य जी शास्त्री रिसर्चस्कालर।
(५) पं० कालूराम जी शास्त्री युक्तिविशारद।
(६) श्रीकृष्ण जी शास्त्री
(७) पं० नित्यानन्द जी शास्त्री

[५] सभापति का प्रश्न उपस्थित हुवा, सभापति निर्णायक हो या केवल व्यवस्थापक हो इस पर मन्त्री सनातनधर्म्म सभा ने अभिप्रायः प्रकट किया कि सभापति निर्णायक हो और हम आर्य समाज के दो पण्डित राजाराम जी शास्त्री और पं० नरदेव जी शास्त्री के नाम पेश करते हैं। इन में कोई एक हो। इस पर मन्त्री आर्य समाज ने

निर्णायक से इन्कार करते हुवे व्यवस्थापक प्रधान की स्वीकृति दी, जैसे कि अब तक शास्त्रार्थ होते हुवे आये हैं, जिस को सनातनधर्म सभाओं ने किये हैं। अतः मजबूरी से चूंकि शास्त्रार्थ करना है पं० नरदेव जी शास्त्री को निर्णायक और व्यवस्थापक प्रधान स्वीकार करते हैं।

[६] शास्त्रार्थ मौखिक हिन्दी भाषा में होगा।

[७] समय-समय का विभाग इस तरह होगा कि वादी अपना पक्ष (२०) बीस मिनट स्थापन करेगा, और प्रतिवादी उसका उत्तर (२०) बीस मिनट तक देगा इसके बाद १०-१० मिनट वादी प्रतिवादी दोनों के रहेंगे।

[८] शास्त्रार्थ के विषय का प्रारम्भ सनातन धर्म सभा की ओर से होगा।

[९] शास्त्रार्थ का समय शाम के ५॥ से ८॥ बजे तक।

[१०] स्थान देवीदीन बाग सुलतान बाज़ार, वर्षा की सूरत में विवेक वर्द्धिनी थियेटर या स्थानपरिवर्तन का अधिकार उभय पक्ष को रहेगा।

[११] पण्डाल सम्बन्धी अर्थात् रोशनी फ़र्श फ़र्नीचर इत्यादि का उभय पक्ष का होगा।

[१२] बैठक का अधिकार समान रहेगा।

[१३] उभय पक्ष के वक्ता किसी के मान्य पुरुषों के सम्बन्ध में अश्लील शब्दों का प्रयोग न करेंगे, केवल प्रमाण देंगे।

[१४] शास्त्रार्थ ३ जौलाई १९३५ से प्रारम्भ होगा।

[१५] आर्यसमाज चारों वेद संहिता भाग को ही स्वत प्रमाण अन्य सब ग्रन्थों को परतः प्रमाण अर्थात् वेद के अनुकूल जो हों वह मान्य और प्रतिकूल अमान्य हैं। अतः आर्यसमाज के सम्मुख इसी के अनुसार प्रमाण दिये जा सकेंगे।

[१६] सनातनधर्म सभा के प्रमाण ग्रन्थ– साङ्गोपाङ्ग वेद उपनिषद् षड्दर्शन मन्वादि धर्मशास्त्र सर्व पुराणोपपुराण वाल्मीकीय रामायण महाभारतादि सब हैं। केवल पुराण के ऐतिहासिक पक्ष का धर्माचरण प्रमाण है अधर्माचरण का नहीं।

[१७] कोई वक्ता विषयान्तर न करेंगे।

[१८] उभय पक्ष के वक्ता उन २ के मान्य ग्रन्थों का ही उदाहरण दे सकेंगे। अन्य का नहीं। अर्थात् आर्यसमाज के सम्मुख स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ का भी और सनातन-धर्म सभा के सम्मुख प्रमाण ग्रन्थ के अनुसार पुराण आदि का भी हवाला दिया जा सकेगा।

[१९] यदि श्री पं० नरदेव जी शास्त्री किन्हीं कारणों से नहीं आसकें तो हैदराबाद के ही किसी सज्जन को एक हो वा दो उभय पक्ष की सम्मति से प्रधान निश्चय कर लेंगे और वह प्रधान एक हो वा दो केवल प्रबन्धक होंगे जो उभय पक्ष को उपर्युक्त नियमानुसार चलावेंगे और सभा मण्डप में जनता पर कन्ट्रोल और प्रबन्ध करेंगे।

किसी प्रधान को किसी पक्ष के जय पराजय की व्यवस्था देने का अधिकार न होगा।

रेसीडेन्सी
हैदराबाद (दक्षिण)
१०-६-३५

द० चन्दूलाल
मन्त्री- आर्यसमाज

(नोटः— एक कापी मन्त्री श्री सनातनधर्म सभा के हस्ताक्षर से मन्त्री आर्यसमाज को भेजी गई)

× × × × × × ×

पाठक शास्त्रार्थ के नियमों को पढ़ कर स्वयं ही यह अनुमान कर सकेंगे कि आर्य्यसमाज ने अपना पलड़ा ऊंचा रखने के विचार से किस तरह धूर्ततापूर्ण एवं स्वपक्षपरिपोषक नियमों को आग्रह पूर्वक मनाने का प्रयास किया है।

जहां सनातनधर्म्म सभा द्वारा आर्य्यसमाज के कट्टर भक्त- पं० राजाराम शास्त्री (प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहोर) और पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ (सर्वस्व- ज्वालापुर महाविद्यालय हरिद्वार) का नाम निर्णायक सभापतित्व के लिये पेश करना उदारता की पराकाष्ठा है वहां समाज के मन्त्री द्वारा अपने ही नेता को निर्णायक न मानना भी समाज की सैद्धान्तिक निर्वलता का नग्न उदाहरण है।

पन्द्रहवें, सोलहवें नियमों में समाज ने हम पर प्रश्न करने को अपने लिये तो विस्तृत मैदान वना लिया है परन्तु सनातन-

धर्म्मी विद्वान् को चतुस्संहितात्मक मन्त्र भाग के प्रमाणों द्वारा ही समाज को विवश करने की कैड़ी शर्त लगादी है जो सर्वथा अन्याय है। होना तो यह चाहिये था– चूंकि समाज की दृष्टि में मन्त्र भाग ही वेद है अतः उसे अपने मान्य वेद के प्रमाणों द्वारा अपने पक्ष को सिद्ध करना चाहिये और सनातनधर्म्मी मन्त्र ब्राह्मण दोनों को वेद मानते हैं अतः वे अपने मान्य वेद द्वारा अपने पक्ष के सिद्ध करने के अधिकारी हैं किन्तु हुवा इसके विपरीत, जिससे समाज का सैद्धान्तिक ट्रैम्प्रेचर भली भान्ति जाना जासकता है।

सत्रहवें नियम का भङ्ग समाज ने पहिले शास्त्रार्थ में ही कर डाला यह बात शास्त्रार्थ पढ़ने पर अच्छी तरह जानी जावेगी।

× × × × × × ×

इस प्रकार समाज के मनमाने नियमों के अनुसार नियत समय पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुवा और चार दिन तक चलता रहा परन्तु चौथे दिन जब म० बुद्धदेव विद्यालङ्कार ने स्वामी दयानन्द के चित्र का 'मोचीपत्र' के साथ षोडशोपचार पूजन किया तो समाजी कैम्प में हलचल मच गई, और इस प्रकार आर्य्यसमाज की धूल उड़ती देख कर आगे को शास्त्रार्थ करने से इन्कार कर दिया, इस तरह केवल चार शास्त्रार्थ ही हो पाए जिनका विवरण पाठकों की भेंट है

विनीत— सम्पादक—



पहिला-शास्त्रार्थ

विषय— 'वर्ण-व्यवस्था'



(सनातन-धर्म्म की तरफ़ से श्री पं० माधवाचार्य्य शास्त्री और आर्य्य समाज की तरफ़ से महाशय बुद्धदेव विद्यालङ्कार के मध्य में होने वाले प्रश्नोत्तर का सार)

पं० माधवाचार्य्य शास्त्री के प्रश्न:—

महानुभाव ! आज के शास्त्रार्थ का विषय 'वर्ण व्यवस्था' है सनातनधर्म्म जन्मप्रधान-गुण कर्म्म स्वभावोपलक्षित वर्णव्यवस्था को मानता है। परन्तु आर्य्य समाज केवल गुण कर्म्म स्वभाव से ही वर्ण व्यवस्था स्वीकार करता है जन्म को नहीं मानता। वेदादि शास्त्रों में जन्मप्रधान वर्णव्यवस्था का ही उल्लेख मिलता है ऐसा मेरा दावा है यथाः—

(क) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्···पद्भ्याँशूद्रो अजायत ।

(ख) चत्वारो वर्णाः···तेषां पूर्वः पूर्वो जन्मतः श्रेयान् ।

(ग) ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत ।

(घ) क्षत्रियोऽजनि ।

(ङ) ऋग्भ्यो जातं वैश्यवर्णमाहुः ।

(च) शौद्रवर्णमसृजन ।

इत्यादि प्रमाणों में जन्म से ही तत्तद् वर्णों के पैदा होने का स्पष्ट वर्णन विद्यमान है । इतिहास भी जन्म के प्राधान्य का ही समर्थन करता है जैसे– राक्षसकर्म्मकारी रावण, वीरशिरोमणि– परशुराम, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य और अश्वत्थामा आदि व्यक्ति क्षत्रियोचित गुण कर्म्म स्वभाव रखते हुवे भी जन्म के कारण ब्राह्मण ही प्रसिद्ध हैं । इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानोपदेष्टा राजा जनक, धर्म्मतत्त्वोपदेष्टा भीष्म जी भी जन्म के अनुसार ही क्षत्रिय प्रसिद्ध हैं । राणा प्रताप की दाईं भुजा सेठ भामाशाह जन्मानुसार ही वैश्य कहे जाते हैं ।

अब दृष्टान्त के रूप में समझिये ! यदि कोई रुपया खोटा हो तो उसे सब खोटा 'रुपया' ही कहेंगे । उसके चलन पर भी बट्टा लगेगा, परन्तु उसे अधेला नहीं कहा जाएगा ठीक इसी

तरह तत्तद् वर्णों के गुण कर्म्म स्वभाव न रखने वाला मनुष्य भी आदरणीय नहीं होगा परन्तु रहेगा उसी वर्ण का जिस में कि उसका जन्म हुवा है यदि केवल गुण कर्म्म के अनुसार वर्णों की व्यवस्था मानी जाय तो महा अनर्थ हो जाएगा क्यों कि प्रत्येक व्यक्ति आवश्यकतानुसार दिनभर में चारों वर्णों के काम कर डालता है कल्पना कीजिये–एक देवी अपने घर में प्रातः झाड़ू चौका वर्तन करती है बच्चों के कपड़े धोती है, भोजन पकाती है और जरूरत के वक्त बच्चों का मलमूत्र भी उठाती है तो क्या वह इन विभिन्न कर्म्मों के अनुसार क्रमशः दासी, धोबन, भटियारन और भंगन बन जाएगी? कभी नहीं। इस से स्पष्ट होता है कि गुण कर्म्म स्वभाव प्रतिष्ठाधायक चाहे होसकते हैं परन्तु तत्तद् वर्णों की सत्ता तो जन्म से ही युक्तिसंगत हो सकती है।

अब हमें आर्य्य समाज की वर्णव्यवस्था पर जो जो आपत्तियें हैं वे सुनियेः—

(१) आर्य्य समाज मानता है कि १६ वें वर्ष तक कन्यायें और २५ वें वर्ष तक कुमार गुरुकुल में पढ़ते रहें। जन्म से लेकर विद्यासमाप्तिपर्य्यन्त इनका कोई खास वर्ण नहीं, परन्तु पढ़ लिख जाने पर उपर्य्युक्त आयु में परीक्षा लेकर जिस लड़के लड़की में जिस वर्ण के गुण कर्म्म स्वभाव विदित हों उसे विद्यासभा उसी वर्ण की सनद देदे। यदि किसी अनपढ़ बाप का बेटा विद्वान् होजाए तो उसे राजसभा के क़ानून के ज़ोर से उस पिता से छीन कर किसी पठित

पिता के सुपुर्द कर दिया जाय और उसे किसी विद्वान् पिता का बेपढ़ बेटा दिला दिया जाए। यही व्यवस्था कन्याओं के लिये नियत है। हमारे विचार में यह व्यवस्था जहां वेदादि शास्त्रों के प्रतिकूल है वहां अप्राकृतिक होने के कारण अमल में आने के लायक भी नहीं। ऋग्वेद-(।५।६।३) कहता है कि:—

"न अन्योदर्यों मनसा मन्तवाउ"

अर्थात्— दूसरे के पेट से पैदा हुवे बच्चे को मन से भी अपना न मानें। कल्पना कीजिये कोई अनाथ विधवा अपने एकमात्र पुत्र को चक्की पीस पीस कर किसी तरह पढ़ाती है और आशाएं बान्धती है कि बुढ़ापे में यह बेटा मुझे कमाकर खिलाएगा! लेकिन जब वह पढ़ लिखकर विद्वान् हो जाता है तो समाजियों की राजसभा अपने नादिरशाही कानून के ज़ोर से उसे उस माता से छीन कर किसी पढ़े लिखे बाबू के हवाले कर देती है और इस की छाती पर किसी का वज्र मूर्ख बेटा ज़बरन बिठा दिया जाता है- कहिये यह व्यवस्था इस विधवा के हक़ में कितनी न्यायसंगत होगी?

(२) इधर 'संस्कार-विधि' में स्वामी जी ने नामकरण संस्कार के समय जबकि बच्चे की सिर्फ दश दिन की आयु होती है यह आज्ञा दी है कि ब्राह्मण की सन्तान का नाम 'देवशर्म्मा' क्षत्रिय बालक का नाम 'देव-वर्म्मा' और वैश्य पुत्र का नाम 'भद्रगुप्त' और शूद्र के बेटे का नाम 'देव-

दास ' इस प्रकार रक्खे जाएं- सो इस समय दूध मुंहे बच्चे में किसी भी गुण कर्म्म स्वभाव का विकाश नहीं हो पाता किन्तु पिता के वर्ण के अनुसार ही उसकी सन्तान के नाम के साथ ब्राह्मणादि वर्णों की सूचक ' शर्म्मा, वर्म्मा, गुप्त और दास ' उपाधि नियत की जाती है यह विधान अवश्य ही जन्मप्रधान वर्णव्यवस्था का समर्थन करता है इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक वालक का वर्ण समाज के ग्रन्थों के अनुसार दशवें दिन जन्ममूलक ही नियत रक्खा जाता है इसी प्रकार उपनयन संस्कार के सम्बन्ध में भी स्वामी जी ने अपने ग्रन्थ ' संस्कार-विधि ' में ब्राह्मण का आठवें वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष और वैश्य का बारहवें वर्ष में संस्कार होना लिखा है, अमुक २ वर्ण के लिये भिन्न २ प्रकार के उपवास करना और उनकी पारणा करना- तथा पृथक् २ काष्ठों के विभिन्न परिमाण वाले दण्ड ग्रहण करना एवं ' भवति भिक्षां देहि ' इस वाक्य का अपनी २ वर्णमर्य्यादा के अनुसार उच्चारण करना आदि आदि बातें लिखी हैं- निःसन्देहतनी ह इछोटी आयु के विद्याविहीन बच्चों में किसी भी गुण कर्म्म स्वभाव का सुस्थिर प्रादुर्भाव स्वीकार नहीं किया जा सकता इस लिये अगत्या उपनयन संस्कार के समय भी पितृ वर्ण के अनुसार ही वालकों का वर्ण मानकर उपर्युक्त विधान वर्ताव में लाया जाएगा, इस तरह यह संस्कार भी जन्ममूलक वर्ण व्यवस्था का ही सर्वांश में समर्थन करता है। यहां यह भी कह देना अनुचित न होगा कि बज स्वामी-

जी के ग्रन्थों के अनुसार भी नामकरण और उपनयन संस्कार के समय सन्तान का जन्ममूलक वर्ण नियत हो चुकता है फिर १६ वें और २५ वें वर्ष की परीक्षा का ढकोसला क्या माने रखता है ? । इस के अतिरिक्त स्वामी जी की परस्पर विरुद्ध उपर्युक्त तीनों व्यवस्थाओं का उत्तरदायित्व भी आर्य्यसमाज पर ही है वे एक जगह दशवें दिन– दूसरी जगह आठवें, ग्यारहवें और बारहवें आदि वर्षों में– तीसरी जगह सोलहवें और पच्चीसवें वर्ष में– वर्ण कायम करने का हुक्म देते हैं इस गड़बड़ घुटाले का क्या तात्पर्य्य है ? ।

(३) व्याकरण की रीति के अनुसार भी ब्राह्मण के वीर्य्य से उत्पन्न हुवे बालक को ही ' ब्राह्मण ' कहा जा सकता है, तत्सम्बन्धी वस्तुवों को ' ब्राह्म ' कहा जाएगा । इसी प्रकार क्षत्री के औरस–पुत्र को ही ' क्षत्रिय ' कहा जा सकता है, तत्सम्बन्धी को ' क्षात्र ' कहा जायगा (ब्राह्मोऽजातौ । क्षत्राद् घः) आदि पाणिनीय सूत्रों की व्याख्या करते हुवे ही स्वयं स्वामी दयानन्द जी ने भी अपने ग्रन्थ– ' वेदाङ्ग प्रकाश ' में ऐसा लिखा है, फिर अनौरस व्यक्तियों को बनावटी पिता के वर्ण के अनुसार कैसे पुकारा जा सकेगा ? इस प्रकार ब्राह्मण आदि शब्द अपत्यार्थक प्रत्ययों द्वारा ही सिद्ध हो सकते हैं जो कि जन्ममूलक वर्ण व्यवस्था को प्रमाणित करते हैं ।

(४) आर्य्य–समाज की वर्ण व्यवस्था में सब से बड़ी गड़बड़ी यह है कि उसका संचालन विद्यासभा और राजसभा के नादिरशाही फतवे के बिना हो ही नहीं सकता ! वर्तमान

समय में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट का राज्य है अब किसी औरसपुत्र को माता पिता की इच्छा के विरुद्ध किसी दूसरे को नहीं दिलाया जा सकता और नांहि कोई मनुष्य अपने विद्वान् पुत्र के वदले में मूर्ख पुत्र को लेने के लिये विवश किया जा सकता है इस लिये दयानन्दीय वर्ण व्यवस्था तव तक चालू ही नहीं हो सकती जव तक कि दुर्भाग्यवश 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' का राज्य न हो जाए! समाज के पास इस समय तक सोलहवें और पचीसवें वर्ष में वर्णों की सनदात बांटने वाली कोई संस्था नहीं है, ऐसी दशा में मौजूदा समाजियों को वर्णवाह्य या वर्णसंकर ही माना जा सकता है। शास्त्रदृष्टि से वर्णवाह्य या वर्णसंकर अत्यन्त निन्दनीय व्रात्य=पतित=पापी होता है। मैं अपने प्रतिपक्षी समाजी पण्डितों से निवेदन करता हूँ कि यदि उनके पास किसी भी वर्ण की वह सनद हो जो कि उन्हें गुरुकुल में विद्या समाप्त करने पर प्राप्त हुई हो- पेश करें जिस से हम जान सकें कि वास्तव में आपका गुण कर्म्म स्वभावानुसार अमुक वर्ण नियत हुवा है। मेरा दावा है कोई भी आर्य्यसमाजी ऐसी सनद पेश नहीं कर सकता!

(५) आर्य्यसमाजी कहने को तो गुण कर्म्म स्वभाव की वड़ी डींग हांकते हैं, और शूद्रादि वर्णों को झांसा देने के लिये अपनी वरावरी का पद देते हैं परन्तु दयानन्दी ग्रन्थों के पढ़ने से अच्छी तरह प्रतीत हो जाता है कि ये साहिव शूद्रों के कितने कुछ हमदर्द हैं, चुनांचे सत्यार्थ प्रकाश के दशवें समुल्लास में लिखा है कि आर्य्यों की रसोई पकाते

समय शूद्र अपने मुंह और नाक पर कपड़ा बान्ध लें। इस तरह समाजी बेचारे शूद्रों को 'नाकोदम' करने की सजा देते हैं उन पर श्वास तक को घोटने का अत्याचार करते हैं। हवन में शूद्र के घर की अग्नि भी लेनी मना कर रक्खी है गोया उनको इतना अछूत समझा है कि उनके घर की आग तक को भी अपवित्र मानते हैं। यजुर्वेदभाष्य में भंगियों के बच्चों के जलावतन करने का नादिरशाही हुक्म दिया है और स० प्र० में शूद्रों को यज्ञोपवीत न देने का और वेद मन्त्र संहिता न पढ़ाने का फर्मान दर्ज है। निःसन्देह ये सब बातें शूद्रों के सम्बन्ध में आर्य्यसमाज की आभ्यन्तरिक नीति का पड़दा फास करने को काफी हैं।

(६) इसी तरह स्वामी जी ने यजुर्वेद भाष्य (१४।६) में राजा को 'सुअर'। वैश्य को ऊंट। और शूद्र को बैल बताकर इन सब वर्णों को अपमानित किया है।

सनातन धर्म्म में तो ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्य्यन्त प्रत्येक व्यक्ति को अपने २ वर्ण का कार्य्य करते हुवे ही मुक्त होजाने का अवसर प्राप्त है। वह कोई जाति नहीं जिस के धर्म्मनिष्ठ व्यक्ति की स० ध० ने उचित प्रतिष्ठा न की हो। हमारे यहां भक्त होने के नाते धन्ना जाट, नन्दा नाई, रैदास चमार, सदना कसाई, शबरी भीलनी और गणिका आदि भक्तों को उसी आदर से देखा जाता है जिस आदर से कि देवर्षि नारद और ब्रह्मर्षि वशिष्ठ को देखा जाता है।

(७) यदि गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार वर्ण बदल सकता है तो फिर मन्वादि स्मृतियों में जो अनुलोमज विलोमज वर्णसंकरों का विस्तृत वर्णन मिलता है उसका क्या अर्थ होगा ? क्योंकि वर्णसंकरता का तात्पर्य्य तो विभिन्न दो वर्णों के रजोवीर्य्य का मेल होजाना ही हो सकता है जो कि जन्म से सम्बन्ध रखता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी जो अर्जुन ने 'संकरो नरकायैव' कहते हुए विधवाओं के वर्णान्तरों से मिलने पर 'संकर' सन्तान उत्पन्न हो जाने का भावि भय प्रकट किया है वह भी जन्मप्रधान वर्णव्यवस्था का ही प्रबल प्रमाण है।

म० बुद्धदेव विद्यालङ्कार के उत्तर

सज्जनो ! आज के शास्त्रार्थ का विषय आप सुन चुके हैं, और इस सम्बन्ध में आर्य्यसमाज का जो सिद्धान्त है वह भी संसार को विदित है आर्य्यसमाज जिस पुरुष में जैसे गुण कर्म्म और स्वभाव देखता है उसे वह उसी वर्ण में नियत करना चाहता है यदि कोई ब्राह्मण होता हुवा भी ब्राह्मणोचित गुण कर्म्म स्वभाव नहीं रखता तो आर्य्यसमाज उसे नीचे गिरा देता है, और यदि एक भंगी चमार में भी अच्छे गुण कर्म्म स्वभाव आजाएं तो वह ब्राह्मण होसकता है यही ऋषि-दयानन्द का सिद्धान्त है, इस प्रकार की वर्णव्यवस्था मानने से ऊंचे वर्ण वालों को नीचे गिरने का भय बना रहेगा, और वे श्रेष्ठ गुण कर्म्म स्वभाव स्थिर रखने का प्रयत्न करेंगे तथा

छोटे से छोटे आदमी को भी तरक्की करने का शौक पैदा होगा जिस से देश की पूरी उन्नति हो सकती है परन्तु सनातनधर्म्मी उन्नति के विरोधी हैं वे कहते हैं कि एक ब्राह्मण कितना ही शराबी कबाबी पतित क्यों न हो बस ब्राह्मण के घर में उत्पन्न होने के कारण वह ब्राह्मण ही बना रहेगा इसके प्रतिकूल यदि कोई शूद्र पढ़ लिख कर लायक बन जाए तो पौराणिक भाई उसे खड्डे में पड़ा रहने को ही विवश करते हैं, अब आप ही अनुमान कर सकते हैं कि यह अन्याय कहां तक उचित है? पण्डित जी ने जो 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्' आदि प्रमाण पेश किया है अब मैं उस पर विचार करता हूं। सनातनधर्म्मी इस मन्त्र का अर्थ करते हैं कि परमात्मा के मुख से ब्राह्मण पैदा हुवे और भुजा आदि से क्षत्रियादि वर्ण। सो क्या परमात्मा ने मदारी की तरह 'हाऊ हाऊ' करके गोले की तरह मुँह से ब्राह्मण निकाल डाले हैं? इसका यह अभिप्राय नहीं है बल्कि इसका यह अर्थ है कि जैसे सब अङ्गों में मुँह सबसे अधिक गर्मी ठण्डी सहन करता है। खाये हुवे पदार्थों को सब अङ्गों तक पहुँचाता है और देखना सुनना समझना आदि ज्ञान का सैन्टर है। ठीक इसी प्रकार जिस मनुष्य में तपश्चर्य्या, परोपकार और ज्ञान पाया जाए उसे ब्राह्मण जानना चाहिये इसी प्रकार भुजा आदि अङ्गों की तरह अमुक २ गुण कर्म स्वभाव रखने वाले व्यक्तियों को क्षत्रियादि वर्णों का समझना चाहिये।

छान्दोग्य उपनिषद् (४।४) में वर्णन आता है कि सत्यकाम जाबालि गोत्तम के पास पढ़ने गया तो उसे अपनी मात. से पूछने पर भी पिता कौन था यह विदित नहीं होसका परन्तु उसने सरल स्वभाव से यही सत्य बात गोत्तम से कह दी, जिस पर प्रसन्न होकर गोत्तम ने उसे 'ब्राह्मण' कह कर पुकारा। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गए थे, यह रामायण में प्रसिद्ध है। रावण दुराचार के कारण राक्षस होगया था। द्रोणाचार्य्य आदि धनुर्वेद के आचार्य्य थे तभी तो गुण कर्म्म स्वभावानुसार ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं। खोटा रुपया जगह जगह अपमानित होता है उससे तो वह पैसा ही अच्छा जो कि विना रोक टोक बाज़ार में चल सकता है। बेशक एक व्यक्ति दिन भर में तरह २ के काम करता है परन्तु जो उसका प्रधान कर्म्म हो तदनुसार ही उसका वर्ण होना चाहिये।

(१) पण्डित जी ने लड़के लड़की बदलने की स्कीम पर जो आक्षेप किये हैं वे व्यर्थ हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यवस्था डंडे के ज़ोर से ही चलाई जा सकती है खुशी से कब कोई मानने लगा है सो अगर सनातनधर्म्मी भी हमारा साथ दें तो हमारी ही राजसभा ऐसेम्बली बन सकती है जिसके ज़ोर पर लड़के लड़की योग्यतानुसार बदले जासकते हैं वेद में साफ़ लिखा है कि:— 'अहमेव स्वयमिदं वदामि'…… (ऋग् १०।१२५।५) अर्थात् राष्ट्रसभा जिसे चाहे ब्राह्मण बनादे जिसे चाहे ऋषि बनादे। पण्डित जी आपके कृष्ण भगवान् भी तो एक लड़की के साथ बदले गए थे फिर यह आक्षेप कैसा?

(२)— नामकरण संस्कार के समय और यज्ञोपवीत संस्कार के समय तो पिता अपनी सन्तान को जिस वर्ण का बनाना चाहता हो वह वैसा ही नाम रखदे ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये इसी भावना के अनुसार यज्ञोपवीत की विधि का निर्वाह होना चाहिये।

(३) मैं व्याकरण की बहस में नहीं जाना चाहता परन्तु आर्य्यसमाज तो स्वयं इस बात पर ज़ोर देता है कि पढ़े लिखे पिताओं के पुत्र वैसे ही गुण कर्म्म स्वभाव वाले होने चाहियें इसके विपरीत हों तो राजसभा उचित परिवर्तन कर सकती है। इसी तरह समाज की व्यवस्था के अनुसार ही तो ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण रह सकता है, सो 'ब्राह्मोऽजातौ' आदि व्याकरण के अनुसार तादृश गुण कर्म्म स्वभावसम्पन्न व्यक्ति को भी अपत्य कहा जा सकता है।

(४) रही सनद पेश करने की बात सो जब मैं गुरुकुल से विदा हुआ था तो आचार्य्य ने मुझे 'ब्राह्मण' कहा था। यह हमारा दौर्भाग्य है कि अभी तक समाज अपनी विद्यासभा और राजसभा नहीं बना पाया। परन्तु आर्य्यसमाज के सिद्धान्तानुसार गुण कर्म्म स्वभाव ही मेरे ब्राह्मण होने की सनद है परन्तु पण्डित जी तो जन्म से वर्ण मानते हैं यदि मैं पण्डित जी से वैसी सनद मांगूं तो वे कैसे पेश करेंगे!

(५) पण्डित जी आर्य्य समाज पर आक्षेप करते हैं कि दयानन्दकृत ग्रन्थों में शूद्रों की बेइज़्ज़ती दर्ज है। यह आक्षेप

मिथ्या है क्योंकि आर्य्यसमाज तो देशोद्धारक संस्था है वह तो मनुष्यमात्र की उन्नति चाहता है। रसोई वनाते समय नाक मुँह पर कपड़ा वांधना तो भोजन में गन्दी हवा न जाने देने के अभिप्राय से लिखा है इसमें अपमान की क्या वात ? यह तो हिकमत का उसूल है। शूद्र प्रायः मांसादि पका लेते हैं इसीलिये हवन में उनका अग्नि अग्राह्य कहा है। हम तो भंगियों को गले लगाते हैं। यदि मेरे कन्या होती तो मैं अवश्य ही योग्य भंगी को दे देता, (स्टेज पर वैठे एक डाढ़ीवाले व्यक्ति से वतियाने के वाद) ये गौड़ ब्राह्मण हैं इनके घर पढ़ी लिखी लड़की है यदि कोई भंगी चाहे तो यह उसका भंगी से विवाह करने को तैयार हैं (उपहास) आर्य्य समाज हर एक शूद्र को यज्ञोपवीत देने के लिये और वेद पढ़ाने के लिये तैयार है जिसे शौक हो वह देख सकता है।

(६) राजा को सुअर कहने का तात्पर्य्य यह है कि जिस प्रकार सुअर अपने आगे वाले शत्रु को फाड़ डालता है इसी प्रकार राजा को भी दुष्टों का दमन करना चाहिये। ऊंट वड़ा परिश्रमी जीव है वह भूख प्यास और धूप छांह की परवाह न करके निरन्तर उद्योगशील रहता है ठीक इसी प्रकार वैश्य को भी परिश्रमी होना चाहिये, मारवाड़ी समाज ने ऊंट के इस अनुकरणीय गुण को धारण किया है तभी तो वह प्रायः धनी होता है। शूद्र जाति को भी वैल की तरह परोपकार एवं सेवा कार्य्य में लगे रहना चाहिये, स्वामी जी ने इसी अभिप्राय से ये

उपमाएं दी हैं। आपको इसमें अमुक जातियों के अपमान की व्यर्थ ही गन्ध आती है। इस प्रकार आपके सब आक्षेपों का उत्तर देने के अनन्तर अब मैं आपके घर की तरफ आता हूं। पण्डित जी ! श्री मद्भागवत (५।४।१३) में लिखा है, कि नाभिराजा के ८१ पुत्र कर्म्म करके ब्राह्मण बन गये थे।

पुराणों में तो लिखा है कि ऋष्यशृंग हरिणी से पैदा हुये थे, शुकदेव तोती से, कणाद उलूकी से, और अमुक ऋषि मेंडकी से पैदा हुवा था। भविष्य पुराण (४१।२२—२३) में लिखा है कि वशिष्ठ गणिका के पुत्र थे, मन्दपाल मुनि किश्ती खेनेवाली से उत्पन्न हुवे थे। व्यास जी झींवरी के बेटे थे। पराशर चाण्डाली से पैदा हुवे थे। देखिये ! ये सब गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही ऋषि बन गए। भविष्य पुराण में यह भी लिखा है कि महर्षि कण्व ने दश हजार म्लेच्छों को शुद्ध करके ब्राह्मणादि वर्णों में मिला लिया। आप भी कण्व की तरह उद्योग करो तो संसार में आर्य्यों का ही बोल बाला हो जाये जब से आप लोगों ने असली सनातन धर्म्म को छोड़ कर —छूछू—करना आरम्भ किया है तब से हिन्दू जाति घटती जा रही है। आइये ! आप भी हमारे कन्धे से कन्धा मिला कर शुद्धि का कार्य्य कीजिये जिस से हिन्दू जाति की फिर से उन्नति हो !



प्रश्नोत्तर का निष्कर्ष–

१— सनातन-धर्म्म की तरफ से–'ब्राह्मणोऽस्य' आदि मन्त्रों में जो 'अजायत' 'जन्मतः' 'असृज्यत' 'अजनि' 'जातम्' और 'असृजत' ये पद पड़े हैं उनका ज़िक्र करते हुवे यह सिद्ध किया गया कि इन वेद प्रमाणों में स्पष्टतया जन्म से वर्णों का होना लिखा है आर्य्यसमाज की तर्फ़ से अन्त तक इन प्रमाणों पर कुछ भी नहीं कहा जा सका वास्तव में समाज के पास इन का कुछ उत्तर है ही नहीं। हां! बुद्धदेव जी ने ऐक्टिङ्ग मोशन के साथ बाज़ीगर की भान्ति गाल फुलाकर मुंह से बम्बगोले निकालने की तरह नकल करते हुवे 'परमात्मा के मुंह से इस प्रकार ब्राह्मण निकल पड़े' यह कहते हुवे काफ़ी मज़ाक की,। यद्यपि सभ्य लोगों ने गुरुकुल के गण्य स्नातक की शाहपुरी नक्कालों को भी लज्जित करने वाली इस लीला को घृणा की दृष्टि से देखा, तथापि टूचे लोगों की तरफ से हंसी की दाद भी मिली जिसे समाज ने बड़ी ही नेहमत खयाल किया।

२— क्षत्रियोचित गुण कर्म्म स्वभाव रखते हुवे भी परशुराम द्रोणाचार्य्यादि जन्मानुसार ब्राह्मण ही कहलाते हैं– इस अंश का कुछ भी माकूल उत्तर न देकर महाशय जी ने सत्यकाम जाबालि का इतिहास व्यर्थ ही पेश किया, जिसके

लिये कहा गया कि इस इतिहास में तो यह स्पष्ट दर्ज़ है कि गोत्तम जी ने सत्यकाम से उसका गोत्र दर्य्याफ्त किया था, जो कि इसे और इसकी माता को भी इत्तिफाक से स्मरण न था, इस में यह तो कहीं भी नहीं लिखा कि सत्यकाम ब्राह्मणे-तर पिता का पुत्र था। इस लिये सत्यकाम तो जन्म से ही ब्राह्मण कुमार था, तभी तो ब्राह्मणोचित स्वाभाविक सरलता से प्रसन्न होकर गोत्तम जी ने उसे अपना शिष्य बनाना पसन्द किया था। अब भी पचहत्तर फीसदी समाजी अपना गोत्र नहीं जानते क्या इस भूल के कारण उन्हें 'वर्णसंकर' करार दे दिया जाएगा ?।

(३) लड़के लड़की बदलने का प्रत्युत्तर देते हुवे महाशय जी खूब झेंपते थे क्योंकि जनता इस बेहूदा स्कीम पर बेतहाशा क़हक़हे लगाती थी, और महाशय जी का दिल घटता जाता था। भगवान् कृष्ण के परिवर्तन के उत्तर में बताया गया कि यह तो एक स्पेशल घटना है आपत्ति से बचाने के लिये ही वसुदेव जी ने उन्हें गोकुल में पहुँचा दिया था साथ ही दोनों फरीक़ ऐसा करने के लिये रजामन्द भी थे, और भगवान् दश वर्ष के बाद फिर अपने असली पिता पास ही आगये थे। परन्तु दयानन्दी व्यवस्था के अनुसार किसी भी विधवा के विद्वान् इकलौते बेटे को ज़बर्दस्ती सदा के लिये छीन लिया जाता है और उसको वज्र देदिया जाता है। म० बुद्धदेव जी अन्त तक इस उलझन से निकल सके।

४— समाज की तर्फ से 'अहमेव स्वयमिदं वदामि' मन्त्र पेश करके जो गप्पूसभापरक अर्थ किया गया था, इस पर पं० माधवाचार्य्य जी ने ललकार कर कहा कि यह मन्त्र 'वागाम्भृणीय सूक्त' का है सो इसकी देवता वाक्=दुग शक्ति है जो कि चराचर की अधिष्ठात्री देवी है वह जो चाहे सो कर सकती है इस सूक्त के अगले मन्त्रों में 'मैं ही द्यावा-भूमि' आदि को बनाती हूँ, ऐसा उल्लेख है। सो वही शक्ति कर्म्मानुसार तत्तद् जीवों को तत्तद् वर्णों में उत्पन्न करती है, यही इस मन्त्र का अर्थ है, इसकी पुष्टि में आर्य्यसमाजी पं० राजाराम शास्त्री का अर्थववेदभाष्य भी पेश किया गया जिससे महाशय जी की कल्पित पसेम्बली की धज्जियें उड़ गईं। जब और कुछ कहते न बना तो घबड़ा कर पं०राजाराम-कृत भाष्य को मानने से साफ इन्कार कर गए और निर्लज्जता-पूर्वक पसेम्बली पसेम्बली ही चिल्लाते रहे परन्तु जनता वास्तविकता को खूब समझ चुकी थी अतः उपहास ही पल्ले पड़ा।

५— 'नामकरण व 'यज्ञोपवीत' संस्कार के समय पिता अपनी सन्तान को जिस वर्ण की बनाना चाहे वैसा ही नाम रक्खे और संस्कार का वैसा ही विधान वर्ताव में लावे'— महाशय जी के इस उत्तर पर पूछा गया कि क्या कोई बाप अपने बेटे को शूद्र बनाम मूर्ख भी बनाने की स्वयं इच्छा रख सकता है? जिस से कि वह उस का नाम शूद्रतासूचक 'दास' रखना पसन्द करेगा? क्या यह मुमकिन है? इस के

अतिरिक्त क्या पिता की इच्छा के अनुसार अवश्य ही प्रत्येक पुत्र उतना उन्नत हो जायगा ? यदि नहीं तो फिर कल्पना कीजिये कि एक पिता ने अपने किसी पुत्र को ब्राह्मण बनाना चाहा और तदनुसार दशवें दिन 'देवशर्म्मा' नाम भी रख छोड़ा परन्तु आगे चल कर वह गुण कर्म्म स्वभावानुसार वैश्य की डिगरी ही पासका, तो क्या फिर उस का पुराना नाम बदल कर नए सिरे से 'भद्रगुप्त' नाम रखा जायगा ? और यह नया नामकरण संस्कार किस संस्कार विधि के अनुसार किया जायगा ? इत्यादि तर्कों का महाशय जी कुछ भी उत्तर न दे सके, वस्तुतः स्वा० दयानन्द सरस्वती की इस दुरंगी का समाज के पास कुछ उत्तर है ही नहीं।

६— 'ब्राह्मोऽजातौ' की वागुरा में तो महाशय जी ऐसे फंसे कि आखीर यही कह कर पिण्ड छुड़ाना पड़ा कि 'मैं व्याकरण की बहस में नही जाना चाहता'— चाहते भी कैसे ? जब कि मूल सूत्र में ही 'अजातौ' पद पड़ा है जो कि ब्राह्मण के वीर्य्य से उत्पन्न हुवे पुत्र को ही 'ब्राह्मण' कह सकने का नियम बान्धता है और उधर दयानन्दकृत 'वेदाङ्गप्रकाश' (पृ०१६५) भी सनातन धर्म्म के दावे को ही सिद्ध करता है।

७— जब महाशय जी ने इस बात को स्वीकार किया कि 'वास्तव में समाज के पास सनदात बांटने वाली राजसभा और विद्यासभा नहीं हैं, तब कहा गया कि ऐसी दशा में यह

स्पष्ट है कि वर्तमान समाजी अपनी व्यवस्था के अनुसार किसी भी वर्ण के नहीं माने जा सकते! तो फिर गुश्ताखी मुआफ़ हो आप सब महाशयों को हम वर्णवाह्य=वर्ण संकर किं वा व्रात्य = पतित क्यों न कहें ? (इस पर जनता में अतीव अट्टहास हुवा)

८— जब महाशय जी ने शूद्रों के मुँह नाक पर कपड़ा बान्ध कर भोजन पकाना और उन के घर की आग को भी हवन में न लेना स्वीकार किया तो उस समय उपस्थित शूद्र-वर्ग को आर्य्यसमाज के विषय में अतीव घृणा हुई जो कि तात्कालिक उपहास से पद २ पर व्यक्त हो रही थी। तब बुद्धदेव जी ने वक्त संभालने के लिये भंगी के साथ अपनी कन्या को विवाह देने के सब्ज़बाग दिखाने आरम्भ किये और दशहजार जनता के सामने झूठ मूठ एक दढियल व्यक्ति को अब्राह्मण होते हुवे भी 'गौड ब्राह्मण' बना कर मिथ्या भाषण की पराकाष्ठा कर दिखाई, परन्तु पं० माधवाचार्य्य जी के यह पूछने पर कि "आर्यसमाज की वर्णव्यवस्था के अनुसार 'गौड ब्राह्मण' किन २ गुण कर्म्म स्वभाव के होने से बन जाता है ? कृपया यह भी प्रकट कर दीजिये"— जनता में खूब अट्टहास हुवा और महाशय जी को अब विदित हुवा कि समाज में भी कोई 'गौड' नामधारी रह सकता है क्या ? और यदि रहे भी तो फिर वह गुण कर्म्मानुसार रहेगा अथवा वंशपरम्परागत जन्मसिद्ध व्यवस्था के अनुसार ? यह था एक फन्दा जो महाशय जी ने अपने आप ही अपने

गले में अविवेक से डाल लिया और फिर निकालना कठिन हो गया ।

९—जव महाशय जी शूद्रों को यज्ञोपवीत न देने और वेद मंत्र संहिता न पढाने के प्रश्न का कुछ भी उत्तर न दे कर केवल शूद्रों की प्रशंसा के पुल वान्ध कर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास करने लगे तो पं० माधवाचार्य्य जी ने अपने समय में से समय देकर सत्यार्थ प्रकाश (पृ० २६ वा ३६) की वह इवारत पढ़ कर जनता को सुना देने की मांग पेश की (जिस में कि स्वामीजी ने यज्ञोपवीत न देना और वेद न पढना लिखा है) एक मिनट तक सन्नाटा रहा। महाशय वुद्धदेव जी पत्थर की मूर्ति वने वैठे रहे परन्तु यह लेख पढ़ कर सुनाने को तैयार न हुवे। इस पर प्रधान पं० वामन नायक साहिव ने सनातनी पण्डित जी से प्रार्थना की कि जनता सव असलियत समझ चुकी है अतः आगे का प्रसङ्ग चालू कीजिये तव वैसा ही किया गया।

१०—जान वचाने के लिये महाशय जी ने जव विषयवाह्य यह कहना आरंभ कर दिया कि अमुक ऋषि हिरणी से, अमुक तोती से, अमुक ऊलनी से और अमुक मैंडकी से पैदा हुवे। तव उन्हें सनातन धर्म्म की ओर से उत्तर दिया गया कि इन सव दृष्टान्तों से गुण कर्म्म स्वभाव से होने वाली दयानन्दी वर्णव्यवस्था का समर्थन नहीं होता, अतः विषयान्तर करना व्यर्थ है। यदि केवल पुराणों में असंभव लेख दिखाना और जनता को भ्रम में डालना ही इस

पैंतरे का अभिप्राय है तो कल पुराणों पर स्वतन्त्र शास्त्रार्थ होना ही है अतः शौक़ से इन प्रश्नों को पेश कर के अपना अर्मान निकाल लेना। इस पर म० बुद्धदेव जी ने कहा कि मैं इन का उत्तर नहीं चाहता केवल बता रहा हूँ। जनता महाशय जी का अभिप्राय समझ गई कि ये सिर्फ़ उत्तर न दे सकने की अपनी निर्बलता को छुपाने के लिये हाथ पांव मार रहे हैं अतः जनता पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। तथापि महाशय जी अन्त तक यही पुकारते रहे कि 'मेरी मेंडकी' 'मेरी ऊलनी' और 'मेरी तोती' 'यह आई मेरी फौज' इत्यादि।

११—पं० माधवाचार्य्य जी ने समझाया कि नाभि के ८१ पुत्र ब्राह्मण नहीं बल्कि ब्रह्मज्ञानी बन गए थे सो वह किसी भी वर्ण का मनुष्य बन सकता है। और विश्वामित्र जी की उत्पत्ति ब्राह्मण चरु से हुई थी इतने पर भी केवल रजोदोष दूर करने के लिये पन्द्रह हज़ार वर्षपर्य्यन्त घोर तपः किया था तब कभी 'ब्राह्मण' कहला पाए थे, महाशय जी ने कहा कि पूर्व युगों में पौराणिक वर्णन के अनुसार लाखों वर्ष की आयुः होती थी अतः विश्वामित्र ने तब १५ हज़ार वर्ष तप करके जो ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था अब आयुः सौ वर्ष की भी नहीं होती तदनुसार औसतन चन्द दिन तप करने पर ही वह ब्राह्मणत्व मिल जाना चाहिये। तर्क तो अच्छी रही, परन्तु इस से जन्मप्रधान वर्णव्यवस्था को प्रकट करने वाले पूर्वोक्त

वेद मन्त्रो पर चौका फिरता है इस बात का महाशय जी को ध्यान नहीं आया ! क्षणमात्र के लिये मान लीजिये कि अपेक्षाकृत थोड़े तपः से ही अब 'ब्राह्मणत्व' मिल जाना चाहिये परन्तु वह उसी को ही तो मिल सकेगा जिसका कि गर्भाधान किसी क्षत्रिय के वीर्य से नहीं वल्कि ब्राह्मणत्वाधायकवेदमन्त्राभिमन्त्रित 'चरु' द्वारा ही हुवा होगा,। हमारे आर्य्यसमाजी मित्र मंत्रशक्ति पर तो विश्वास नहीं रखते परन्तु विश्वामित्र का उदाहरण देने का साहस कर उठते हैं लेकिन उन्हें जान लेना चाहिये कि इस कथा को सर्वांश में मान लेने पर अमैथुनी= याज्ञिक सृष्टि का यह निदर्शन भी आर्य्यसमाज की मनघडन्त वर्णव्यवस्था का समर्थन न करके उल्टी उसकी धज्जियें उड़ा डालता है, और इस प्रकार धर्म्मनिर्णायक वेद स्मृति आदि वलवत्तर प्रमाणों के अभाव में यह ऐतिहासिक निदर्शन भी समाज की रक्षा नहीं कर सकता, महाशयों की यह दयनीय दशा वस्तुतः शोचनीय है।

१२—भविष्य-पुराण के आधार पर जो वशिष्ठादि महर्षियों को गणिका आदि द्वारा पैदा हुवे कहा गया इसके उत्तर में पं० माधवाचार्य्य जी ने पुराण खोल कर समझाया कि यहां पुरा कल्प का प्रसङ्ग है एक ही जीव कर्म्मानुसार अनेक योनियों में परिभ्रमण करता है। शूद्रादि वर्णों के मनुष्यों का तो जिक्र ही क्या है तिर्य्यञ्च योनियों में पैदा हुवे जीव भी कर्म्मविपाक से जन्मान्तर में सम्राट् योगी आदि

बन सकते हैं, और कर्म्मतारतम्य से नीचे भी गिर सकते हैं। वशिष्ठादि भी कल्पान्तर में ऐसे हो सकते हैं। सो यहां जन्मान्तर ही नहीं वल्कि कल्पान्तर की व्यवस्था है इस से आर्य्यसमाज के- गुण कर्म्म स्वभाव से एक ही जन्म में वर्णान्तर बदल जाने के दावे का समर्थन नहीं होता।

१३— कण्व ऋषि द्वारा शुद्ध किये म्लेच्छों के सम्बन्ध में सनातन धर्म्म की तरफ से कहा गया कि कण्व शकुन्तला के धर्म्मपिता प्राचीनतम महर्षि हैं, जिन का समय अवश्य ही आज से लाखों वर्ष पूर्व सुनिश्चित है, उस समय मुसलमान इसाई आदि आधुनिक जातियें विद्यमान नहीं हो सकतीं क्यों कि ऐतिहासिक दृष्टि से इन मतमन्तातरों का प्रादुर्भाव दो-सहस्र वर्ष से पूर्व न हो पाया था, सो 'म्लेच्छ' शब्द का अर्थ मुसलमान आदि समझ बैठना कोरा भ्रम है। महाभाष्या-दि ग्रन्थों के अनुसार 'म्लेच्छ' का तात्पर्य्य विशुद्ध संस्कृत भाषा न बोल सकने वाला व्यक्ति है जो कि किसी भी वर्ण का हो सकता है सो कण्व के समय में मिश्रादि देशों में रहने वाले आर्य्य लोग अपनी संस्कृत भाषा को भूल कर तत्तद्-देशीय प्राकृतभाषाभाषी हो चले थे। कण्व कुलपति थे, अतः उन्हों ने अपने विद्यालय में १० हज़ार 'म्लेच्छ'= अशुद्धभाषी छात्रों को पढ़ा लिखा कर शुद्ध= संस्कृतभाषाभाषी बना दिया था यही इस इतिवृत्त का तात्पर्य्य है यहां किसी के वर्ण बदल देने का ज़िक्र नहीं है। ऐसे म्लेच्छों= अशुद्धभाषाभाषी

विद्यार्थियों को तो अब भी शुद्ध= संस्कृतभाषाभाषी बनाया जाता है। सनातन धर्म्म के अगणित संस्कृत विद्यालय इस के प्रमाण हैं। परन्तु इस से आर्य्यसमाज की अशास्त्रीय एवं विज्ञानशून्य शुद्धि का किंवा मनमानी वर्ण व्यवस्था का समर्थन नहीं हो सकता। इस पर महाशय जी चुप होगए और फिर इस प्रमाण को रिपीट करने की हिम्मत न पड़ी।

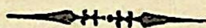
१४— अनुलोमज विलोमज वर्णसंकरों की व्यवस्था को एवं गीता के 'संकरोनरकायैव, को कई वार याद दिलाने पर भी महाशय जी ने अन्त तक छुआ ही नहीं।



दूसरा-शास्त्रार्थ



विषय—'पुराणों की वैदिकता'



महाशय देवेन्द्र सांख्यतार्थ के प्रश्न

महोदय! वेद में लिखा है कि 'सप्त मर्य्यादा कवयस्त-तक्षुः' अर्थात् शराब पीना, जूआ खेलना, चोरी करना आदि सात महापाप हैं। यही बात मेरे प्रतिपक्षी पं० माधवाचार्य्य-जी ने भी अपने बनाए ग्रन्थ 'सनातन धर्म' में दर्ज की है, वेद की यह आज्ञा राजा रङ्क सभी के लिये समान रूप से शिरोधा-र्य्य है परन्तु पुराण ग्रन्थों में इसके विरुद्ध घटनाएं पाई जाती हैं। जैसेः—

(१) भविष्य पुराण में लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण जी ने शराब पीकर औरतों के साथ जल-क्रीड़ा की, नारद जी ने

यह वात दिखाने के लिये कृष्णजी के पुत्र साम्ब को वहां भेजा, साम्ब की सुन्दरता को देखकर उन स्त्रियों की धोतियें खराव होगईं। कहिये! ऐसी भद्दी वातों का वेदों से क्या सम्वन्ध ?

(२) भविष्य पुराण में लिखा है कि शिव जी ने शिव-दूती से कहा कि तू मेरी नाभि के नीचे लटकते हुवे जो अण्डकोश हैं जिन्हें आजतक किसी ने नहीं खाया उन्हे खाले। यह नरमांसभक्षण की शिक्षा अत्यन्त घृणास्पद है।

(३) भविष्य पुराण में लिखा है कि शिव पार्वती ने जूआ खेला, महादेव जी हारगये, उन्हे नंगा करके निकाल दिया। इसलिये राजा को दीवाली के समय एक वड़ा उत्सव मनाना चाहिये जिसमें जूआ खेला जाए और रंडियों का नाच कराया जाए यह शिक्षा सदाचार के विरुद्ध है।

(४) देवीभागवत में लिखा है कि विष्णु ने तुलसी का पातिव्रतधर्म्म भङ्ग करके उसके पति शंखचूड़ को मारा। तुलसी के शाप से विष्णु शालिग्राम पत्थर वने और विष्णु के शाप से तुलसी गण्डकी नदी वनी।

(५) शिवपुराण में लिखा है कि शिव पारवती का विवाह हो रहा था ब्रह्माजी संस्कार करा रहे थे उनके मन में विकार उत्पन्न हुवा, पार्वती के पावों की सुन्दरता देख कर स्खलित होगए, जिस से साठ हज़ार वालखिल्य पैदा हुवे।

(६) शिवपुराण में लिखा है कि शिवजी नंगे होकर हाथ में लिङ्ग पकड़ कर ऋषिपत्नियों में पहुँचे, ऋषियों ने बुरा माना खूब पूजा (?) की, और लिङ्ग कटजाने का शाप दिया, तत्काल लिङ्ग कट कर गिर पड़ा और तीन लोक को भस्म करने लगा। इसी लिये सनातनधर्म्मी पानी सींचते हैं, महाराज!

आशा है पण्डित जी मेरे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देगें, और बताएंगे कि ऐसी २ अश्लील बातें वेदों में कहां लिखी हैं।

पं० माधवाचार्य्य शास्त्री के उत्तर:—

महानुभाव! एक वार का जिक्र है कि किसी बादशाह को हरा रंग बहुत पसंद आया और उसने हुक्म दिया कि सब दुनिया को हरे रंग में रंग डालो। नौकरों ने अर्ज की कि हजूर! मकानात वगैरा तो कोशिश करने पर हरे रंगे जासकते हैं मगर चान्द सूर्य्य आकाश पाताल सब कुछ कैसे रंगे जा सकेंगे। बादशाह हठी था एक न मानी अपनी जिद्द पर अड़ा रहा, जब किसी अक्लमन्द को यह भेद मालूम हुवा तो उसने दरख्वास्त की कि मैं सब दुनिया को हरे रंग में रंग डालूंगा परन्तु एवज में एक लाख रुपया लूंगा। बादशाह ने सस्ता सौदा समझा, नौकर भी हैरान थे, एक लाख रुपया देदिया गया, बुद्धिमान् ने एक हरे रंग का कांच बादशाह की आंख पर रख दिया और कहा कि चारों ओर देखिये कैसा नजर आता है देखने पर हरा ही हरा दीख पड़ा। ठीक यही दशा हमारे महाशय जी की है, यद्यपि पुराणों में कुछ भी दोष नहीं है परन्तु महाशय जी ने अपना दृष्टिकोण दोषमय बना रक्खा है इसलिये इनको

उत्तम से उत्तम पौराणिक प्रसंग भी दोषयुक्त दीख पड़ता है अस्तु अब मैं आपके प्रश्नों पर विचार करता हूं ध्यानपूर्वक श्रवण कीजिये।

(१) आपने कहा कि कृष्णजी शराव पीकर औरतों से जलक्रीड़ा करते थे इस कथा के समझने में महाशय जी को एक भ्रम होगया वह यह कि कृष्ण दो हुवे हैं, एक गीता के उपदेशक अर्जुन के सारथि हमारे पूज्य देव षोड़शकलापूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी, और दूसरा करूष देश का राजा काशीनिवासी महाराजा पौण्ड्रक नकली कृष्ण! जो भगवान् से द्वेष रखता था इसलिये इसने अपना अपने नगर का और परिवार आदि के नाम भी वैसे ही रख छोड़े थे जैसे कि भगवान् के थे, चतुर्भुज वनने के लिये लकड़ी के वने मसनवी हाथ भी लगा लिये थे और भगवान् की तरह ही शंख चक्र गदा पद्म आदि भी धारण करता था। श्रीमद्भागवत (१०।६६।१–२३) में यह सव वर्णन आता है। अन्त में इस नकली कृष्ण ने हमारे भगवान् कृष्णजी के पास अपना दूत भेजा और कहा कि 'मैं ही असली कृष्ण हूं' जिस पर भगवान् ने इसके साथ संग्राम किया और मार डाला। आप जो कथा पेश कर रहे हैं यह उसी शरावी कवावी नकली कृष्ण से सम्वन्ध रखती है उसने हमारे भगवान् का स्वांग तो सव कुछ भरलिया था परन्तु भगवान् के उच्चतर सदाचार का अनुकरण नहीं कर सका था इस प्रकार के नकली ढोंगियों का अन्त में ऐसा ही परिणाम हुवा करता है। यही आपके प्रथम आक्षेप का समाधान है।

इस कथा का हमारे पूज्य भगवान् से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है आपने व्यर्थ ही इसके पेश करने का परिश्रम किया है। यदि यह लीला हमारे भगवान् की होती तो जैसे हम अपने इष्टदेव की माखनलीला रासलीला आदि के अभिनय करते हैं इसी प्रकार कभी शराबलीला भी अवश्य करते, परन्तु ऐसा नहीं किया जाता इससे स्पष्ट है कि यह लीला हमारे श्रीकृष्णजी की नहीं है।

(२) दूसरा आक्षेप आपने शिवदूती को अंडकोश भक्षण करने के लिये शिव भगवान् के कथन पर किया है। इस कथा का भाव भी आपने नहीं समझा। महाशय जी! 'शिव' नाम ब्रह्म का है जो कि संसार का संहार करता है और उस शिव की दूती मृत्यु है जो संहार कार्य्य की अधिष्ठात्री शक्ति है। विराट् के नाभिस्थानीय अन्तरिक्ष में लटकता हुवा = निराधार ठहरा हुवा यह अण्डकोश= ब्रह्माण्ड मृत्यु का भक्ष्य है, सो शिव भगवान् के आदेश से मौत इस ब्रह्मांड को भक्षण कर जाती है यही इस कथा का अभिप्राय है। आप ने अंडकोश का अर्थ किसी मनुष्य का गुह्य स्थानीय मांसपिण्ड (फोते) समझा है यदि आप कुछ भी विवेक से काम लेते तो ऐसा भ्रम न होता, क्योंकि कोई भी प्राणधारी स्वयं अपने इस मर्म स्थानीय अङ्ग को किसी दूसरे मनुष्य को खुशी २ से काट कर खाने के लिये प्रदान नहीं कर सकता और ऐसा करने पर नाही प्रायः जीवित रह सकता! इस के अतिरिक्त आपने आक्षेप करते हुवे शिव जी के उस वाक्य का भी जिक्र

किया है जिस में कि भगवान् शिवदूती से यह कह रहे हैं कि 'यह अण्ड आज तक अन्य किसी ने नहीं खाया' यह उक्ति गुह्याङ्ग के भक्षण पर घटित नहीं हो सकती क्योंकि सैंकड़ों मांसाहारी प्राणी दूसरे प्राणियों को सर्वाङ्ग सहित खाजाते हैं और डकार तक नहीं लेते, फिर 'किसी ने नहीं खाया' इस का क्या समन्वय ? इस लिये यहां 'अण्डकोष' का तात्पर्य्य 'ब्रह्माण्ड' ही है, क्यों कि ब्रह्माण्ड को मौत के अतिरिक्त दूसरा कोई खा ही नहीं सकता ! अण्ड= अण्डकोश और ब्रह्माण्ड ये शब्द शास्त्रों में पर्य्यायरूप से आते हैं। अतः आपका आक्षेप व्यर्थ है।

(३) जुवे का उत्तर सुनिये ! जुवा दो प्रकार का होता है एक पैसे कौड़ी सलाई और पासे आदि से खेला जाता है और दूसरा अन्नादि वस्तुओं के भावी भाव कल्पना करना तथा मल्लों की शारीरिक गठन के आधार पर हार जीत का अनुमान करना, और घुड़दौड़ में घोड़े की चपलता द्वारा तेज-दौड़ का अन्दाजा लगाना, इत्यादि कहलाता है। मनुस्मृति (९। २२३) में तथा नारद स्मृति में पहिले भेद को 'जिह्म-कारित' = ठग्गी के नाम से और दूसरे को 'समाह्वय' = चुनौती के नाम से याद किया है। सो वेदादि शास्त्रों में 'अक्षैर्मादीव्य०' (ऋग्वेद १०। ३४। १३) अर्थात्– पाशे मत खेल। ऐसा कहते हुवे पहिले प्रकार के द्यूत को ही निंद्य ठहराया है। क्यों कि इस में जड़ वस्तुओं की परतन्त्रता में पड़ कर प्रायः हानि ही होती है बुद्धि का कुछ भी उपयोग नहीं

हो सकता, इत्तिफाक से कुछ भी दाव पड़ जाओ यही इसके निन्दित होने का कारण है परन्तु दूसरे प्रकार का जुआ शास्त्रों में पाप नहीं समझा गया, क्यों कि इस से कल्पना शक्ति बढ़ती है तथा साहस का भी उत्थान होता है। 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' (व्यवहाराध्याय द्यूत प्रकरण) में यह बात स्पष्ट लिखी है, प्रत्यक्ष में भी समस्त संसार की सभ्य गवर्नमेण्टों के कानून में 'जिह्म' (पहिले-प्रकार के जुए) को ही अपराध समझा जाता है। वदनी के सौदे, घुड़दौड़ या बरसात के सट्टे, तथा लाटरी और मैंत्र में प्रत्येक शहर में बड़े से बड़े सेठ साहूकार- यहां तक कि राजा और सम्राट् भी आए दिन हिस्सा लेते हैं। यद्यपि यह भी एक प्रकार का जुआ ही है और खतरे से भी खाली नहीं तथापि प्रवृत्ति मार्ग वाले लोगों के लिये यह एक अंश तक लाभकारी तथा मनोरञ्जन का साधन है अतः शास्त्र और लोक व्यवहार में इसे अपराध नहीं समझा जाता। कदाचित् सब प्रकार का जुआ ही पाप होता तो वेद में इसकी निन्दा ही मिलती परन्तु हम तो देखते हैं कि अथर्व वेद में एक पूरा का पूरा ऐसा सूक्त विद्यमान है जिस में कि जुए में विजय प्राप्त करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है यथाः—

याचैः परिनृत्यत्याददाना कृतं लहम्।
.... मानो जैषुरिदं धनम्।

(अथर्व ४। ३८। ३)

(राजाराम भाष्य) जो दाव से कृत को लेती हुई अर्थों नर्दों के विन्दुओं) के साथ चारों ओर नाचती है ......इस धन को हम से दूसरे न जीतें। सो पुराणों में भी चक्रवर्ती राजा के लिये दीपावली के समय ऐसे विश्व सम्मेलन 'करने का विधान' है जिस में नुमाइश, खेल, तमाशे, मैत्र, घुड़दौड़ आदि के साथ नाचगान भी हुआ करते थे, जैसा कि स्वतन्त्र देशों में अब भी प्रायः होता है। यही इस प्रसङ्ग का तात्पर्य्य है।

रहा शिव का पार्वती से जुआ खेलना सो हम पीछे प्रकट कर चुके हैं कि शिव नाम ब्रह्म का है और पार्वती नाम माया का है सृष्टि रचना रूप कार्य्य ही इन दोनों की द्यूतक्रीड़ा है, जिस में पुरुष तो निमित्तमात्र रहता है किन्तु प्रकृति का ही प्राधान्य रहता है यही पार्वती का जीत जाना है। ब्रह्म निर्लेप निरञ्जन है अतएव हमारे शिव भगवान् दिगम्बर किंवा नग्न कहे जाते हैं। जब प्रकृति मल विक्षेप आवरणात्मक पड़दों को छीन कर अपनालेती है तब ही वह शिवतत्त्व योगियों के हृदयों में विशुद्ध= नग्न रूप में भासते हैं।

नृत्य एक पवित्र कला है, वह आजकल बाज़ारू औरतों का पेशा मान कर घृणित समझी जाने लगी है परन्तु आर्य्य-संस्कृति के अभ्युदय के जमाने में यह विद्या भी अन्यान्य विद्याओं की भांति आदर की दृष्टि से देखी जाती थी, सो राजा महाराजाओं के यहां सम्मेलनों के समय इस हुनर से भी दिल बहलाव किया जाया करता था।

(४) आपने चौथा प्रश्न किया है कि विष्णु भगवान् ने तुलसी का सतीत्व भङ्ग किया वह गण्डकी नदी बनी– इस आक्षेप का आधा समाधान तो स्वयं आपने ही एक वाक्य में कर दिया, कोई साढ़े तीन हाथ की जीवधारिणी औरत भी नदी बन सकती है क्या ? इस से जाहिर होता है कि इस कथा का सम्बन्ध किसी मानव व्यक्तियों से नहीं हो सकता ! अपितु इसमें अवश्य ही कुछ गहरा रहस्य छुपा है। सो सुनिये ! शंखचूड़ जिसको जलन्धर नाम से भी पुकारा जाता है 'बादल' का नाम है। क्योंकि जल को धारण करने के कारण यह बादल का अन्वर्थ नाम है। उस बादल की औरत तुलसी हैं जिसका नाम अन्यत्र वृन्दा भी लिखा है सो वह 'बिजुली' है जो कि बादल के पहलू में छुपी रहती है। विष्णु नाम 'वायु' का है जोकि सर्वत्र व्यापक है। यही कथा ऋग्वेद में इन्द्र वृत्रासुर संग्राम के नाम से प्रसिद्ध है। वैज्ञानिक रीति से जब तक मानसून हवाएं बादल के अन्दर रहने वाली विद्युत् शक्ति से मेल नहीं कर पातीं तब तक बादल मर नहीं सकता अर्थात् मेह बरस नहीं सकता, इसलिये प्राणियों के जीवनार्थ जब विष्णु रूप वायु तुलसी रूप विद्युत् को हठात् ग्रहण कर लेता है तब शंखचूड़रूप बादल छिन्न भिन्न होकर धराशायी होजाता है सो महाशयजी ! इस वृष्टि के प्रताप से ही नदियें बहती हैं जिनमें गण्डकी भी एक है, गण्डकी नदी के काले पाषाण में स्वर्णमय वैद्युत परमाणुवों का बाहुल्य होता है अतएव सनातनधर्मी इसको शालिग्राम कहते हैं और भगवत्

पूजन का साधन मानते हैं। तुलसी पत्र के मेल से शालिग्राम भगवान् का चरणामृत स्वर्णकणों के संमिश्रण के कारण 'मकर-ध्वज' और 'चन्द्रोदय' जैसी सिद्ध औषधों के समान गुणकारी बन जाता है इसी लिये सनातनधर्म्मी उसे पीकर अनेक रोगों से मुक्ति प्राप्त करते हैं। इस कथा में इतनी गहरी फिलासफी छुपी है। यदि आप हमारा बनाया 'पुराण दिग्दर्शन' ग्रन्थ पढ़ लेते तो फिर आपको यह प्रश्न उपस्थित करने का व्यर्थ कष्ट न उठाना पड़ता।

(५) शिव पार्वती के विवाह के समय ब्रह्मा का वीर्य्य-पात होगया, यह कथा वेदों में भी ज्यों की त्यों उपलब्ध होती है। यथाः—

(क) स प्रजापति व्यस्रंꣳसत (शतपथ ८।२।२।६)

(ख) तस्माद्वीर्य्यमुदक्रामत्। (शतपथ ७।१।२।१)

इत्यादि– श्रुतियों में यह स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा का वीर्य्यपात हुवा और उससे 'वालखिल्य' पैदा हुवे। इस प्रकार इस कथा के वेदोक्त होने पर इसका उत्तरदातृत्व हमसे भी ज्यादह आप पर आपड़ता है क्योंकि 'ययोरेव समोदोषः परिहारस्तयो-स्सम.'। परन्तु आप क्या उत्तर दे सकते हैं! क्योंकि 'न विवाह हुवा न वारात गए' शास्त्र के गहन तत्वों तक आर्य्य-समाज की पहुँच कहां? सो इसका भी उत्तर श्रवण कीजिये।

सृष्टि के आरंभ में पुरुष और प्रकृति का जो मिथुनी-भाव होता है वही यहां शिव और पार्वती का विवाह समझना चाहिये। सृष्टि के प्रधान सूत्रधार सूर्य्य भगवान् हैं

अतः वही इस प्रसङ्ग में 'ब्रह्मा' कहे गए हैं सो जब यह विवाह सम्पन्न होने लगा तो प्रकृति की चरणस्थानीया भूमि का निर्माण होचुकने पर सूर्य्य रूप ब्रह्मा का वीर्य्य= तेज=प्रकाश छिटक पड़ा जिससे अनेक प्राणधारियों की उत्पत्ति हुई, प्राणों का दारोमदार सूर्य्य पर निर्भर है यह बात प्रायः सभी वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं सो सूर्य्य द्वारा उत्पन्न होने वाली जीवनी-शक्ति को ही यहां 'बालखिल्य' नाम दिया गया है। यही इस कथा का आशय है। आपने इस कथा में 'वीर्य्य' शब्द का जो अश्लील अर्थ समझा है वह आपकी भूल है यदि आप हठ करेंगे तो स्वयं लज्जित होना पड़ेगा क्योंकि आर्य्य पाठशालाओं में भी तो कन्याएं और कुमार इकट्ठे होकर 'आर्य्याभिविनय' का पाठ करते हुवे प्रतिदिन कहते हैं कि:—

"वीर्य्यमसि वीर्य्यमयि धेहि"

अर्थात् हे परमात्मन् आप वीर्य्य हो और हमें भी वीर्य्य दो। कहिये ! क्या आप निराकार बाबा से वही भद्दी चीज मांगा करते हैं जोकि आक्षेप करते हुवे आपकी ज़बान से निकली है।

(६) अन्तिम आक्षेप है आपका 'नग्न शिवका ऋषि-पत्नियों में जाना' और लिङ्ग का टूट जाना, सो महाशयजी ! यह कथा उस समय की है जब कि देहधारी प्राणियों का तो जिक्र ही क्या– सूर्य्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र पृथ्वी और आकाश आदि चीज़ें भी पैदा नहीं हुई थी, यह बात इस कथा के 'इदं-दृश्यं यदा नासीत्' आदि उपक्रम से भली प्रकार विदित

जाती है। सो ऐसी दशा में इस प्रसङ्गमें शिवभगवान् को साढ़े तीन हाथ का शरीरधारी व्यक्ति समझना, और उसका वस्तुतः कहीं! स्त्रियों के समुदाय में नग्न चलेजाना खयाल करना एवं उसके गुह्य स्थानीय मांसपिंड का टूट पड़ना मानना महा-मूर्खता है। वास्तव में इसका अभिप्राय यह है कि सृष्टि रचना के आरंभ में शिव=ब्रह्म, नग्न=विशुद्धदशा में, ऋषिपत्नियों= आकर्षण विकर्षणात्मक शक्तियों के मध्य में 'ब्रह्माण्ड' रूप से प्रकट होता है अनन्तर वही लिङ्ग=लीनार्थ गमक चिन्ह= ब्रह्माण्ड आकर्षण विकर्षण के तारतम्य से द्यावा भूमि रूप दो भागों में विभक्त होजाता है= टूट जाता है।

वेद में इस तत्व को 'विद्युत् पुरुष' नाम से याद किया है और पुराणों में इसे 'ज्योतिर्लिङ्ग' बताया है भाव एक ही है। आपने लिङ्ग शब्द का अर्थ समझने में भूल की है यदि आप किसी सनातनधर्मी विद्वान् के चरणों में बैठ कर शिव पुराण का अध्ययन करते तो मूल पुस्तक में ही आपको अपनी शङ्का का समाधान मिल जाता। लिङ्ग पारिभाषिक शब्द है। शिव पुराण (विद्येश्वरी १६। १०६) में इस शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है:—

लीनार्थगमकं चिन्हं लिङ्गमित्यभिधीयते।

अर्थात्— लीन= अव्यक्तावस्थापन्न वस्तु के गमक= जतलाने वाले चिन्ह को (लीन + ग =) लिङ्ग कहते हैं। सो अव्यक्त ब्रह्म ही 'शिव' कहा जाता है और उस का परिचायक

यह ब्रह्माण्ड ही शिव लिङ्ग है यही इस कथा का रहस्य है। आशा है अब आप को इस विषय में कुछ भी सन्देह शेष न रहा होगा। भविष्य में आप केवल अभिधार्थ मात्र समझ कर शङ्कित न हूजिये अपितु लाक्षणिक और व्यग्यार्थ समझने का भी प्रयत्न किया कीजिये। वेदों और पुराणों में ऊंचे दर्जे की शायरी मौजूद है। कल्पना कीजिये! कि अगर कोई कहे कि 'अपनी नाक की रक्षा करनी चाहिये' तो यहां नाक शब्द का अभिप्राय चमड़े का बना नोकीला पपोटा नहीं होगा अपितु 'प्रतिष्ठा' = आन और शान ही समझना चाहिये। वेद में भी 'चत्वारिश्रृंगा' आदि अनेक मन्त्र ऐसे आते हैं कि जिन का अभिधार्थ करने पर अनेक शङ्काएं उत्पन्न हो सकती हैं। वास्तव में चार सींग तीन पांव दो शिर और सात हाथ वाला कोई बैल नहीं हो सकता परन्तु जब अभिधार्थ से आगे बढ़कर यज्ञ परक किम्वा धर्म्म परक अर्थ किया जाता है तो बड़े २ रहस्य खुलते हैं, ठीक यही दशा पौराणिक कथाओं की है। वे ऊपर से देखने में तो अटपटी सी जंचती है परन्तु अन्तरमुख होकर विचारने से अतीव रहस्यों से भरी हुई सिद्ध होती हैं। यही आपके सब प्रश्नों का उत्तर है।

अब हम यह बताना चाहते हैं कि आर्य्यसमाज के किसी भी उपदेशक ने पुराणों को नहीं पढ़ा है इसी लिये आप इन पवित्र ग्रन्थों पर मिथ्या कलङ्क लगाने का पाप करते हैं हमारा दावा है कि आप लोगों का तो कहना ही क्या है, आर्य्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी पुराणों

का गुरु मुख से अध्ययन नहीं किया था। प्रमाणार्थहम कह सकते हैं कि अष्टादश पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण सर्वसुलभ और सर्वविदित है परन्तु स्वामी जी ने इसे भी अपनी आंखों नहीं देखा यदि वे इसे एक वार भी पढ़ लेते तो फिर भागवत का खण्डन करते हुवे इस के नाम पर झूठी कथाएं न लिखते। सत्यार्थप्रकाश (पृ० ३५३) में स्वामी जी ने श्रीमद्भागवत पुराण के नाम पर प्रह्लाद की कथा इस प्रकार लिखी है

'एक लोहे का खंभा अग्नि में तपा के उस से वोला जो तेरा इष्ट देव राम सच्चा हो तो इस को पकड़ने से न जलेगा, प्रह्लाद पकड़ने को चला मन में शंका हुई जलने से वचूंगा वा नहीं ? नारायण ने उस खंभे पर छोटी २ चीटियों की पंक्ति चलाई।"

यदि आप श्रीमद्भागवत में लोहे का खंभा, उस का तपाया जाना और उस पर नारायण का चीटियें चलाना आदि वातें लिखी दिखादें आर्य्यसमाज सच्चा और आप को पांचसौ रुपया इनाम ! (यह कहते हुवे पांव सौ रुपये की जालीदार-थैली स्टेज पर रखदी गई) यदि आप न दिखा सकें तो अपनी हार स्वीकार कर लीजिये (सभा में अतीव कुतुहल) मेरा दावा है कि आप नहीं दिखा सकेंगे !

प्रश्नोत्तर का निष्कर्ष

(१) प्रथम प्रश्न के उत्तर की आलोचना करते हुवे महाशयजी ने कहा कि 'यहां साफ लिखा है कि कृष्णजी ने शराव पी और साम्ब को देखकर रानियों की धोतियें खराव

होगई' प्रमाणार्थ मराठी भाषा का 'भविष्य-पुराण पढ़कर सुनाया गया; जिसके उत्तर में पं०माधवाचार्य्य जी ने ललकार कर कहा कि आप इस प्रसङ्ग में कहीं भी यह लिखा दिखावें कि यह इतिहास,गीता के उपदेष्टा, अर्जुन के सारथी, यदुकुल भूषण, हमारे अवतार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी का है। इसके प्रतिकूल मैं श्रीमद्भागवत पुराण के आधार पर नकली कृष्ण के दुराचारों को पेश कर चुका हूं उसकी ही यह सब लीला है इससे हमारे इष्टदेव पर कुछ आक्षेप नहीं हो सकता। महाशयजी ने बहुत उछल कूद की परन्तु अन्त तक वे ऐसा कोई प्रमाण उपस्थित न कर सके जिससे कि आर्य्यसमाज के दावे का समर्थन होसके।

२— दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुवे स०ध० की ओर से यह कहा गया कि कोई शरीरधारी मनुष्य अपने गुह्य स्थानीय उस भाग को– जिसपर कि साधारण चुटकी की चोट लगने पर भी मूर्छा आजाती है– प्रसन्नता पूर्वक कब किसी को खिला सकता है! और ऐसा करने पर कैसे जीवित रह सकता है!! तब उत्तर में महाशयजी कह बैठे कि "महादेव तो ऐसे ही अद्भुत व्यक्ति हैं वे तो घड़े के घड़े हलाहल विष पीजाने पर भी जीवित ही रहे" इसपर पं०माधवाचार्य्य जी ने कहा कि बस! आपके कथनानुसार जो शक्ति विष के मटके पीजाने पर भी नहीं मर सकती और अपने अत्यन्त मर्मस्थान के जुदा होजाने पर भी तथैव जीवित रह सकती है वह सिवा परमात्मा के और कौन होसकता है अतः हठ छोड़कर इस

महाशक्तिशशाली भगवान् शिव के चरणों में मस्तक झुका दीजिये, बेड़ा पार होजायेगा ! (जनता में प्रचण्ड अट्टहास) इस नोक झोंक पर महाशयजी लज्जित होगए परन्तु रंग जमाने के खयाल से मज़ाक पर उतर आए, बोले- लीजिये सनातनधर्म्मियों के इष्टदेव 'बधिया' होगए ! सनातनधर्म्मियों को भी अपने इष्ट की तरह अपने अण्डकोश काट डालने चाहियें !! (हंसी) पं० माधवाचार्य्य जी ने भी मज़ाक का उत्तर उसी टोन में देते हुवे कहा कि जनाब ! यूँतो हमारे इष्ट-देव पहिले से ही कामदेव कोभस्मसात् कर देने वाले थे परन्तु आपके कथनानुसार अबतो 'न होगा बांस न बजेगी बांसुरी' के अनुसार सर्वथा ही निर्विकार होगये यह और भी 'सोने में सुगन्ध' होगई। परन्तु न जाने क्यों आप इस क्रिया से बहुत ही चिन्तित से हो रहे हैं क्या हमारे शिवभगवान् के इस अङ्ग की मौजूदगी में ही आपका कुछ खास प्रयोजन सिद्ध हो सकता था (हंसी) वास्तव में शिव भगवान् तो भक्तों की भावना पूरी करने वाले हैं। हम निर्विकार शिव के उपासक हैं अतः हमारे लिये वे वैसे बन गए और आप लोग नियोगी पन्थ के अनुयायी हैं आपको जिस अङ्ग की खास आवश्यकता थी वह अङ्ग आपके लिये प्रदान करदिया (अट्टहास) रहा हम सनोतनधर्म्मियों को भी अपनें इष्टदेव का अनुकरण करना चाहिये- आपका यह मशवरा, सो हमें शिरोधार्य्य है हम महादेवजी का पार्ट अदा करने को तैयार हैं बशर्ते आपभी शिवदूती का पार्ट प्ले करने को रजामन्द हों ! कहिये क्या

विचार है ? (अतीव अट्टहास)

३— तीसरे प्रश्नके उत्तर की आलोचना करते हुवे म० देवेन्द्रजी ने कहा कि बस ! खूब जुआ खेला करो, और रण्डियें नचाया करो ! अच्छा दिल बहलाव हुवा साहिब ! ! प्रत्यालोचना करते हुवे पं०माधवाचार्य्यजी ने समझाया कि यह सब मारवाड़ी समाज खूब बदनी के सौदे करता है। खासकर हैदराबाद में बरसात का सट्टा चलता है आपके गुरुकुलों में भी हाकी और फुटबाल के मैच नित्य होते हैं आप सब जुआरी ही ठहरे ! रहा नाच का प्रश्न सो तो आर्य्यसमाज के प्रसिद्ध कन्या महाविद्यालय जालन्धर में प्रायः सभी छात्राएं उत्सवों में सर्व साधारण जनता के सामने बेला, बैलून, सितार, आदि बाजे बजाकर गाती बजाती नाचती हैं ! अबतो कांग्रेस की लीडर श्रीमती जुत्सी जैसी प्रतिष्ठित महिलाएं भी फिल्मों में जाकर नाचने लगी हैं विलायत में शाही खानदान की बहू बेटियें भी डांसिज में भाग लेती हैं। अनौचित्य के लिये क्षमा चाहता हूँ वकील चौधरी जियालाल कृत 'दयानन्दचरितदर्पण' आर्य्यसमाज के बानी स्वामी दयानन्द सरस्वती भी चौदह वर्ष की आयु तक खूब नृत्य करते रहे हैं (शोरोगुल) स्वामीजी तो यजुर्वेद भाष्य (३०।२०) में प्रत्येक समाजी के लिये नाचना लाज़मी करार देगए हैं। इस प्रकार खरी २ बातें सुन कर महाशयों के चेहरों पर हवाइयें उड़ने लगीं और अब खयाले शरीफ में आया कि ' है ये गुम्मद की सदा जैसी कहे

वैसी सुने'।

४— चौथे प्रश्न के उत्तर की आलोचना करते हुवे महाशय जी ने कहा कि पण्डित जी साइन्स खूब जानते हैं लीजिये अब तुलसी से विजली पैदा करके दिखाएंगे। अब पण्डितजी के पावर हाउस से रोशनी हुवा करेगी। (हंसी) प्रत्यालोचना में स०ध० की तर्फ से कहा गया कि श्रोतृवृन्द! आपही निर्णय कर लीजिये कि महाशय जी जो विजली की वात सुनकर भौंचक्के होगए हैं यह कहां तक उचित है; । यह तो सभी जानते हैं कि नदियों से विजली पैदा की जासकती है,पंजाव के जोगेन्द्रनगर में और यू०पी० में गङ्गनहर से विजली पैदा करके दोनों प्रान्तों को सप्लाई की जारही है महाशय जी को शायद अभीतक यह मालूम नहीं है। इसी प्रकार यदि गण्डकी नदी से निकालने का प्रयत्न किया जाए तो वहां से भी निकल सकती है इसमें आश्चर्य्य की कौनसी वात है, गण्डकी नदी का पत्थर प्रत्यक्ष में ही स्वर्णकणों से विमिश्रित होता है यह देखते हुवे भी महाशयजी इस नदी की विशेषता का विज्ञान मानने में आना कानी करते हैं यह हठधर्म्मी है। तुलसी की वैद्युत् शक्ति का पता लेना हो तो वनस्पतिशास्त्र के प्रख्यात ज्ञाता श्रीजगदीशचन्द्र वसु से पूछ देखिये आपने यन्त्रों द्वारा यह वात सिद्धकर दिखाई है कि तुलसी का पौदा ईश्वरीय औषधालय है जिसमें सब प्रकार के रोगों को दूर कर देने की अद्भुत सामर्थ्य विद्यमान है। सनातनधर्म्मियों के शास्त्रीय

पावरहाउस की ज्ञानमय रोशनी से पं० भीमसेनजी पं०अखि-लानन्दजी आदि कट्टर आर्य्यसमाजियों के हृदयों का सन्देह-मय अन्धकार तो दूर होचुका है यह सब जानते हैं, आज मेरे पावरहाउस से आपको रोशनी मिलने का नम्बर है सो यदि आपकी आंखों पर वेतन का परदा पड़ा हुवा न होता और हृदय कपाटों में कट्टरता की कील ठुकी हुई न होती तो अवश्य ही आप भी प्रकाशमय जीवन विता सकने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते ! (हंसी)

५— पांचवें प्रश्न के उत्तर की आलोचना में म०देवेन्द्रजी ने कहा कि वेदों में जो वालखिल्य सूक्त आता है उसका इस पौराणिक कथा से कुछ भी सम्वन्ध नहीं, यहां तो साफ लिखा है कि 'ब्रह्माजी का वीर्य्यपात होगया'। प्रत्यालोचना करते हुवे पं०माधवाचार्य्यजी ने कहा कि वेदों में तो पुराणों से भी अतीव स्पष्ट शब्दों में वीर्य्य का पात होजाना दर्ज है यथा— तस्यरेतः परापतत् (तैत्तिरीय १।१।३।८) फिर भी आप व्यर्थ का हठ करते हैं , कदाचित् आपको हमारा समाधान पसन्द नहीं हो तो कृपया आपही इस वैदिक कथा का उचित समाधान कर दिखाइये, न आप स्वयं कुछ कहते हैं और न हमारा कहा स्वीकार करते हैं, आपकी इस नज़ाकत की वलिहारी है।

६— जव महाशयजी ने दिग्म्वर शिवजी के लिङ्ग टूट जाने के समाधान का उपहास करते हुवे कहा कि शिवपुराण में तो साफ लिखा है कि स्त्रियों में नंगे शिव को देख कर भृगु जी ने शाप दिया कि:—

मिथ्या तापस ! लिङ्गं ते पततामत्रभूतले ।

अर्थात्–हे बनावटी पूपने ! तेरा लिङ्ग भूमि पर गिर जाए तब लिङ्ग टूट गया और तीन लोक में घूमने लगा तथा संसार भस्म होने लगा तब सब देवताओं की स्तुति सुनकर पार्वती-जी ने उसे अपनी योनी में धारण किया पण्डित जी अलङ्कार की शरन में जाकर जान बचाना चाहते हैं। इस पर पं० माधवाचार्य्य जी ने समझाया कि महाशय जी ! शिवपुराण में जो कुछ लिखा है वह सब ठीक लिखा है परन्तु आप जान-बूझ कर जनता को भ्रम डालने का प्रयास करते हैं मैंने पहिली ही बार आप को बता दिया था कि इस कथा का आरम्भ उस समय से किया है जब कि यह दृश्य संसार भविष्य के गर्भ में लीन था, मैं अपने टाइम में से आधा सैकंड आप को देता हूँ हां याना कहिये इस कथा के उपक्रम में यह बात दर्ज है कि नहीं ? (खामोश) अच्छा 'लिङ्ग' शब्द का अर्थ शिवपुराण की परिभाषा के अनुसार 'ब्रह्माण्ड' ठीक है या गलत ? (चुप) महाशय जी ! कहते क्यों नहीं ? (इस पर प्रधान जी ने कहा कि जनता सब समझती है ज्यादह मजबूर मत कीजिये) अस्तु, आप स्वयं फरमा रहे हैं कि टूट जाने पर वह लिङ्ग तीन लोक में घूमने लगा संसार को भस्म करने लगा, क्या यह करामात कटे हुवे किसी मांस के नाचीज़ टुकड़े में हो सकती है ? यदि आप के उस अङ्ग को काट दिया जाए तो वह भी हवाई जहाज़ बन सकता है क्या ?

और एक रुई के फंवे को भी फूंक सकेगा क्या? कहिये परीक्षा देने के लिये तैयार हो! (अट्टहास) वास्तव में यह सब बातें ब्रह्माण्ड में ही घटित हो सकती हैं। वर्तमान साइन्स भी इस बात का समर्थन करती है कि आरंभ में यह हमारी पृथ्वी सोने के तपे हुवे गोले के समान अग्निपुञ्ज थी! सो जिस ब्रह्माण्ड में सूर्य्यादि समस्त पिण्ड अपनी विभिन्न सत्ता को छोड़ कर एकीभूत होकर समाये हुवे थे उस ज्योतिर्लिङ्ग किम्वा विद्युत्पुरुष की दाहकता का क्या पारावार! वही गोला जब 'तदण्ड मभवद्‌द्वेधा' (मनु १।१२) के अनुसार टूट कर द्यावाभूमि नामक दो भागों में विभिन्न हो गया तो उस समय अवश्य ही एक महान् तौफान मचा होगा। उस टूटे हुवे ब्रह्माण्ड को पार्वती= माया की योनि= कारण भूत-शक्ति ही अपने में स्थिर कर सकती थी अन्य किसी की ऐसी सामर्थ्य कहां? सो जैसे शिवपुराण की परिभाषा के अनुसार 'लिङ्ग' शब्द का अर्थ ब्रह्माण्ड है इसी प्रकार 'योनि= या भग' शब्द का अर्थ भी प्रकृति है यथा—

भं = वृद्धिं गच्छतीत्यर्थाद् 'भगः' प्रकृतिरुच्यते।

(शिवपुराण विद्येश्वरी १६।१०६)

अर्थात्– 'भ'=वृद्धिको 'ग'=प्राप्त होनेवाली (भ+ग= भग) प्रकृति को कहते हैं। (हर्षोल्लास)

इसके अतिरिक्त यदि हम क्षणमात्र के लिये यह स्वीकार भी करलें कि वस्तुतः साढ़ेतीन हाथ के देहधारी

शिवजी ही नंग होकर ऋषिपत्नियों में गये थे और स्त्रियों ने उनसे ऐसी बदसलूकी की थी तब भी आपसे प्रष्टव्य यह है कि क्या इस प्रसङ्ग में कहीं यह भी लिखा है कि शिव भगवान् बुरी नियत से वहां गए थे, और वहां जाकर किसी भी देवी को कुछ भला बुरा कहा था, यदि नहीं तो फिर अब भी तो ऊंची वृत्ति वाले सैकड़ों परमहंस नंगी हालत में यत्र तत्र भ्रमण करते हैं। वास्तव में परदा तो मानव सुलभ निर्बलता को छुपाने के लिये किया जाता है जो देहाध्यास शून्य ज्ञानी भयंकर विषधर को भी पुष्पहार की भांति धारण करते हुवे नहीं हिचकते उन निर्विकार महात्माओं के लिये दुशाले ओढ़ना या दिगम्बर फिरना दोनों दशाएं बराबर हैं। संयोग वश ऐसा परमहंस नग्न हालत में आर्य्यसमाज के स्त्रीसत्सङ्ग में आ निकले और आपसे महाशय उसके स्वरूप को न पहिचान कर केवल नंगेपन के अपराध पर क्रोधान्ध होकर मारने पीटने लग जाएं तथापि वह महात्मा हिमालय की चट्टान की तरह तथैव शान्तभाव से खड़ा रहे, इस घटना से परमहंस पर कुछ भी आक्षेप नहीं आसकता उल्टा बुद्धिमानों को आपकी बुद्धि विहीनता पर ही दया आएगी; सो यही बात हमारे दिगम्बर शिव भगवान् की इस लीला पर चरितार्थ होती है।

सत्यार्थप्रकाश लिखित प्रह्लाद् की कल्पित कथा का कुछ भी उत्तर देकर म०देवेन्द्रजी ने सिर्फ इतना कहा कि "पं० जी बार २ थैली उछालते हैं परन्तु आर्य्यसमाज जुआरी नहीं

है । शर्तें बांधना जुआरियों का काम है पं०जी के पुराणों में ही जुआ खेलना सिखाया है" तथा फिर पं० माधवाचार्य कृत 'शास्त्रार्थपञ्चक' पुस्तक के पृष्ठ ५५ से नीचे लिखी इबारत पढ़नी आरम्भ की :—

जिन (समाजियों) के ग्रन्थों में– बैल, मेंढा, बकरे से नियोग करना, ... चौदह वर्ष तक जिमींदार के लड़के से बदफैली करवाना...... इत्यादि और कहा कि ये वही पण्डित जी हैं जिन्हों ने 'रंगीला ऋषि' पुस्तक लिख कर आर्य्यसमाज प्रवर्तक को गालियें दी थीं जो किताब जब्त हो चुकी है। 'दयानन्द भावचित्रावली' जैसी गन्दी किताब भी आप की ही करतूत है, शास्त्रार्थ पञ्चक आप सुन ही रहे हैं आर्य्यसमाज को कोसने का आपने ठेका ले रक्खा है जब पुराणों की गन्दी बातों का आप से कुछ उत्तर नहीं बना करता तो आप ओछे-हथियारों पर उतर आया करते हैं और आर्य्यसमाज तथा स्वा० दयानन्द जी जली कटी सुनाया करते हैं= आदि २ बातें कहकर जनता को बरगलाना चाहा उत्तर में पं० माधवा-चार्य्य जी ने कहा कि उचित तो यह था कि महाशय जी मुझे भला बुरा न कहकर– 'श्रीमद्भागवत् पुराण में से प्रहलाद की वह कथा निकाल कर दिखाते जिसमें कि लोहे का खंभा, उसका तपाया जाना एवं चींटियें चलाना आदि २ बातें दर्ज हैं, ऐसा करने पर स्वामी दयानन्द जी सच्चे साबित हो जाते और जनता पुराणों को निकम्मा समझ लेती, तथा

साथ ही पांचसौ रुपये की थैली भी इनाम में मिलती परन्तु परमात्मा गंजे को नाखून नहीं देता ! आप इसे जुवा बताकर पल्ला छुड़ाना चाहते हैं इनामात को जुए में शामिल नहीं किया जाता अमुक २ कार्य्य करने पर वायसराय तक को इनाम मिलता है आप के गुरुकुलों में जो विद्यार्थियों को उत्सवों के समय इनामात दिये जाते हैं वह सब आप जुआ ही खेला करते हो क्या ? मैं फिर ललकारता हूं। महाशय जी 'हां या नां, में उत्तर दें। कहिये ! यह कथा श्रीमद्भागवत में इस प्रकार है ? (सन्नाटा, महाशय जी खामोश, आधामिनट तक उत्तर की इन्तजार करने पर भी जब– 'ज़िमी गुम्मद न गुम्मद गुलमुहम्मद'। जनता में करतल ध्वनि) (प्रधान जी द्वारा शान्ति– स्थापित हो जाने पर) अच्छा ! जनता समझ गई कि स्वामी जी ने यह कथा झूठी लिखी है यह तो निवटारा हो गया। अब आपने जो मुझ पर व्यक्तिगत आक्षेप किये हैं उनका भी टका सा जवाब सुनिये, मैं ने 'रंगीलाऋषि' आदि पुस्तकें अवश्य लिखी हैं और मैं इस बात से भी मुनकिर नहीं होता कि इन पुस्तकों में आर्य्यसमाज और स्वा० दयानन्द जी की खूब खबर ली गई है परन्तु यह तो आर्य्यसमाज की गालियों का सूदमात्र चुकाया है स्वा० दयानन्द जी ने तो अपने सत्यार्थ प्रकाश में, वेदव्यास जी को 'कसाई' (पृ० ३६६) भक्त प्रहलाद को 'मूर्ख' (पृष्ठ ३५३) गुरुनानक देव को 'दंभी' (पृ० ३७८) इसी प्रकार अन्य सब सम्प्रदायों के मान्य पुरुषों को भी पानी पी पी कर कोसा

गया है सत्यार्थ प्रकाश 'अथ' से लेकर 'इति' पर्य्यन्त इसी खुरापात से भरा पड़ा है, पहिले घर की गन्दगी साफ कीजिये फिर मेरे ग्रन्थों की शिकायत करना उचित होगा।

आर्य्यसमाज लिक्खाड़पन की वड़ी २ डींगे हांका करता है परन्तु आज तक मेरे किसी पुस्तक पर कलम उठाने की किसी भी महाशय की हिम्मत नहुई 'रंगीला ऋषि' की जब्ती के लिये गवरनरों के दर्वाज़े खट खटाएं परन्तु उसका तहरीरी जवाव किसी समाजी से न वन पड़ा, 'दयानन्दभावचित्रावलि' के चौदह प्रश्नों का उत्तर देने वाले महाशय को प्रत्येक प्रश्नके लिये १०) इनाम की घोषणा छपी हुई है परन्तु ग्यारह वर्ष कुज़र जाने पर भी उत्तरदाता महाशय नहीं निकला। अव भारतवर्ष की जनता यह वात भली प्रकार जान चुकी है कि आर्य्यसमाज के पास पं०माधवाचार्य्य के प्रश्नों का कुछ भी उत्तर नहीं है।

रही आपकी यह शिकायत कि आपके किये हुवे पुराण-विषयक प्रश्नों का मैंने उत्तर नहीं दिया सो तो ये दश पन्द्रह हज़ार जनता स्वयं समझती है यह मेरे और आपके निर्णय का विषय नहीं है। महाशयजी! मैंने तो आपके क्या स्वामी-दयानन्द से लेकर आज तक के समाजियों के पुराणों पर जितने भी आक्षेप हुवे हैं और होसकते हैं उन सव आक्षेपों का सभ्यतापूर्ण किन्तु मुँहतोड़ जवाव तहरीरी दे डाला है, लीजिये! यह छः सौ पृष्ठ का बृहद् ग्रन्थ 'पुराण दिग्दर्शन' आपके सामने उपस्थित है (अट्टहास)



तीसरा-शास्त्रार्थ

विषय—'स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध और कपोल कल्पित है'



पं० माधवाचार्य्य शास्त्री के प्रश्न

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका में और (पृ० ७२) में यह लिखा है कि मेरा मत वेद है और 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में भी केवल संहितभाग की वेदसंज्ञा स्वीकार की है तदनुसार आर्य्यसमाज का यह दावा है कि हमारा मत मन्त्र संहितात्मक वेदों के सर्वथा अनुकूल है परन्तु हमारा पक्ष है कि स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों में बहुत सी ऐसी बातें दर्ज हैं जो कि न सिर्फ वेद विरुद्ध

ही हैं अपितु आर्य्यसंस्कृति के प्रतिकूल,= मानव-मर्य्यादा के खिलाफ, एवं हिन्दुवों को कहने में आर्य्य किन्तु रहन सहन में इसाई किम्वा नास्तिक बना डालने वाली भी है प्रमाणार्थ हम कुछ प्रश्न उपस्थित करते हैं और आशा करते हैं कि म०-बुद्धदेव जी उन्हे वैदिक सिद्ध करके दिखाएंगे। तद्यथा—

(१) यह सब जानते हैं कि हिन्दुवों का सबसे बड़ा धार्मिक चिन्ह 'शिखा' है वेदादि शास्त्रों में- सन्यासाश्रमियों के अतिरिक्त शेष सब हिन्दूमात्र के लिये सदैव शिखा रखना परमावश्यक लिखा है यथा—

(क) यशसे श्रियै शिखा (यजुः १६।१२)

(ख) सदोपवीतिनाभाव्यं सदाबद्ध शिखेनच।
(स्मृति)

अर्थात्— सदा शिखा बंधी रहनी चाहिये। इतिहास भी इस बात की साक्षी देता है कि यवन काल में शिखा की रक्षा के लिये हमारे लाखों पूर्वजों ने हल्दीघाट और पानीपत के मैदान में अपने प्राणों तक को न्योछावर कर दिया, विदेशी आक्रमणकारी छल से बल से और लाखों तरह के प्रलोभन देकर हमारे इस चिह्न को विनष्ट करने के लिये सातसौ वर्ष तक पूरा प्रयत्न करते रहे परन्तु विगत शताब्दियों का रक्त रञ्जित इतिहास कानों में अंगुली डाल कर पुकार २ कर कह रहा है कि हमें मस्तक कटाना पसन्द था परन्तु जीते जी

अपनी शिखा के चार वालों को शत्रुवों के हवाले करना गवारा न था।

अस्तु जिस शिखा का इतना वड़ा महत्व है उसी शिखा के विषय में स्वामी दयानन्द जी वेदाभिमानी होने का व्यर्थ दावा करते हुवे भी अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' (पृ० २७२) में हुक्म देते हैं कि:—

'उष्णदेश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये। क्योंकि शिर में वाल रखने से उष्णता अधिक होती है' और उस से वुद्धि कम हो जाती है, कृपया वतलाइये स्वामी जी का यह आदेश किस वेद मन्त्र के अनुकूल है तथा यह भी प्रकट कीजिये कि गर्मी सर्दी का असर तो स्त्री पुरुष दोनों पर समान रूप से ही पड़ता है, भारत उष्णदेशों में से एक है खासकर वंगाल मद्रास और निजाम प्रान्त तो और भी अधिक उष्ण हैं। ऐसी दशा में स्वामी जी की आज्ञानुसार एतद् प्रान्तीय न सिर्फ पुरुष समाजियों को ही अपितु उनकी श्रीमतियों को भी मुन्डन करना आवश्यक है! उन मुंडित मस्तक आर्य्यसमाजन महिला समुदाय के कल्पित चित्र का ज़रा ध्यान तो कीजिये कि यह सीन कितना भयङ्कर दीख पड़ेगा।

(२) सत्यार्थ-प्रकाश (पृ० २३) में लिखा है कि:—

'प्रसूता का दूध छः दिन वालक को पिलावे

पश्चात् धायी पिलाया करे'। ... प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे

यह आज्ञा किस वेद मंत्र के अनुकूल है ?। वेद में तो इसके प्रतिकूल स्पष्ट शब्दों में यह प्रकट किया गया है कि बच्चे के लिये उसकी माता का दूध ही परम पुष्टिकारक है। यथा:—

उत्सं जुषस्व मधुमन्त मर्वन्! (१७। ६७)

निस्सन्देह स्वामी जी का यह हुक्म इसाईयों की नक्ल है।

(३) सत्यार्थप्रकाश (पृ० २४) में लिखा है कि:—

'स्तन के छिद्र पर उस औषधि का लेप करे जिस से दूध स्रवित न हो ऐसा करने से दूसरे महीने पुनरपि युवति हो जाती है। स्त्री योनि संकोचन शोधन और पुरुष वीर्यस्तभंन करें',

कहिये यह अश्लील वर्णन किस वेद मन्त्र में दर्ज है? वेद तो ईश्वरीय ज्ञान का भंडार है, स्वामी जी ने वेदों के नाम पर इस प्रकार की कोकशास्त्रीय गन्दी बातें लिख कर उन्हें कलङ्कित कर डाला है।

(४) आर्य्यसमाजिक संस्कार विधि के अनुसार कन्या के विवाह की तिथि पूर्व से निश्चित नहीं की जा सकती क्यों

कि स्वामी जी फरमाते हैं कि:—

'जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध होजाए तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उसमें विवाह करने के लिये प्रथम ही सामग्री जोड़ रखनी चाहिये' (सं० वि० पृ० १२६)

—सो रजस्वला होने की ठीक तिथि पहिले से ही नहीं जानी जा सकती दो चार दिन आगे पीछे हो जाने की प्रायः संभावना हो सकती है इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने विवाह संस्कार के समाप्त होते ही तत्काल श्वशुर के घर में अथवा जनवासे में गर्भाधान कर डालने की लज्जा पूर्ण आज्ञा दी है। कृपया बतलाइये ये बातें किस वेद के अनुकूल है? हमारा दावा है कि ये बातें जहां वेद के विरुद्ध हैं वहां सभ्यता के भी खिलाफ हैं।

(५) 'संस्कारविधि (पृ० १४६) में लिखा है कि विवाह में अग्निपरिक्रमा करते हुवे अर्थात् फेरे लेते समय वर कन्या के अतिरिक्त पानी का घड़ा उठाए एक लट्ठबन्ध जवान आदमी भी साथ२ परिक्रमा करे', यह बात न सिर्फ वेद के प्रतिकूल ही है अपितु एकाधिक पुरुषों के साथ फेरे लेने के कारण हिन्दू-तहज़ीब के भी सर्वथा विरुद्ध है।

(६) संस्कार विधि (पृ० १२६) में लिखा है कि वर वधू विवाह से पूर्व सम्मिलित स्नान करते समय परस्पर एक

दूसरे के मुत्रेन्द्रिय (पेशाव के अङ्ग) को ('इमन्ते उपस्थं-मधुना संसृजामि') इत्यादि मन्त्र बोलते हुवे यानी= (मीठा, शहद शराव, आदि) से संयुक्त करें। कहिये वाममार्गियों को भी लज्जित करने वाली यह वहशियाना हर्कत किस वेद के अनुकूल है।

(७) संस्कार विधि (पृ० ५५) में लिखा है कि- पति को अपनी औरत के बालों में तेल डालकर अपने हाथ से मांग पट्टी निकाल कर जूड़ा (चोटी) बान्धना चाहिये, -इस प्रकार की निर्लज्ज चेष्टाएं प्रायः कामुक लोग किया करते हैं, परन्तु स्वामीजी ने इस प्रकार के आदेश वेदों के नाम पर देकर उन्हें बदनाम किया है कहिये यह लीला किस वेद में दर्ज है ?

(८) संस्कार विधि (पृ० ५५) में लिखा है कि:—

'खिचड़ी में पुष्कलघृत डाल कर गर्भिणीस्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे उस समय पति स्त्री से पूछे- 'किंपश्यसि' स्त्री उत्तर देवे प्रजां पश्यामि' उस खिचड़ी को खावे "

यह छाया दान को खाजाने की पोपलीला किस किस वेद मन्त्र के अनुसार है ? इसके अतिरिक्त अपने मुख की परछांही देखते हुवे भी ऐसा झूठ बोलने का विधान करना कि 'मैं इसमें औलाद देखती हूं' स्वामीजी का नैतिक पतन है।

आशा है महाशयजी मेरे इन सब प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करेंगे।

म० बुद्धदेव विद्यालङ्कार के उत्तर

मैं तो बड़ी आशा रखता था कि आज के शास्त्रार्थ में पंडितजी कोई सैद्धान्तिक गंभीर प्रश्नउपस्थित करेंगे परन्तु प्रश्न सुनने पर विदित हुवा कि वही पचासों वार की कही सुनी बातें पेश की गई हैं, अस्तु ! मैं अब इन सब प्रश्नों का उत्तर देता हूं। सुनिये !

(१) शिखा काटदेने के विषय में स्वामीजी ने जो कुछ लिखा है उसका मतलब यह है कि यदि ज्यादह गर्म्मी पड़ती हो, और चुटिया के वालों से मनुष्य को तकलीफ मालूम पड़ती हो तो अथवा शिर में फोड़े फुन्सी निकल आवें तो उसके कटवा देने में कुछ हर्ज़ नहीं, चुटिया तो हमारे शरीर रूपी क़िले पर फरकने वाला एक झण्डा है, जबतक चाहें खड़ा रक्खें और जब चाहे उतार कर फैंकदें। (जनता में उपहास) वेद में भी लिखा है कि—

यत्रबाणा संपतन्ति कुमारा विशिखा इव।

अर्थात्— युद्ध में बाण ऐसे उड़ते हैं जैसे कि विना चुटिया के बाल सो चुटिया के रहने या न रहने से धर्म्म का क्या बनता बिगड़ता है। स्त्रियों का मुण्डन तो सनातनधर्म्मी ही करवाते हैं काशी हरिद्वार आदि तीर्थों पर ऐसी सैंकड़ों स्त्रियें दीख पड़ती हैं।

(२) स्वामीजी ने जो छः दिन तक प्रसूता का दूध पिलाना लिखा है उसका तात्पर्य्य यह है कि यदि माता बीमार हो अथवा दूध की कमी हो तो बच्चे को धाय को देने में क्या हर्ज है, आखीर बच्चे को दूध तो पिलाना ही चाहिये, स्वामीजी की व्यवस्था बच्चे के हक में कितनी मुफीद है यह जनता भली प्रकार समझ सकती है, पण्डितजी की राय है कि धाय का दूध न पिलाया जाए तभी तो यह प्रश्न उपस्थित किया है सो अगर पण्डितजी के कथनानुसार माता के रुग्ण होने पर किंवा दूध की कमी की दशा में भी बच्चे को धाय का दूध न पिलाया जाए तो वह तड़प कर मर जाएगा। अब जनता ही निर्णय कर सकती है कि स्वामीजी का लेख ठीक है या पण्डितजी की राय ?

पंडितजी ने जो वेद मन्त्र पेश किया है उसका अभिप्राय तो इतना ही है कि बच्चे को भर पेट दूध पिलाना चाहिये, सो यदि माता के स्तनों में काफी दूध हो तो वह पिलाए और यदि ऐसा न हो तो फिर धाय आदि के दूध का प्रबन्ध किया जाए।

(३) सब गृहस्थ जानते हैं कि जब स्त्रियों के बच्चे पैदा होते हैं तो उस समय उनके प्रायः सभी अङ्ग शिथिल पड़ जाते हैं तथा वे अतीव निर्बल होजाती हैं इस लिये प्रसव के अनन्तर आयुर्वेद शास्त्र में ऐसे अनेक प्रकार के उपचार लिखे हैं कि जिनके प्रयोग से प्रसूताओं के वे सब अङ्ग पुनः दृढ़ होजाते हैं

और वे पूर्ववत् तन्दुरुस्त होजाती हैं, सो स्वामीजी महाराज ने भी अपने सत्यार्थप्रकाश में प्रसूता के लिये वैसी औषधियों के सेवन की शिक्षा दी है, जिनके लगाने से स्तन कठिन होजाएं और योनि भी संकुचित होजाए, इसमें बुरी बात क्या है। वेद में भी स्पष्ट लिखा है कि—

त्रिष्णुर्योनिं कल्पयतु।

अर्थात्- योनि समर्थ=गर्भधारण के योग्य दृढ़ होनी चाहिये। न जाने पण्डितजी को इस प्रकार की उपयोगी बातों में भी शंका क्यों है ?

(४) स्वामीजी ने रजस्वला होजाने के बाद पूर्णयौवना-वस्थापन्न कन्याओं के विवाह की शिक्षा दी है वेद भी इसका समर्थक है यथाः—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

बालविवाह के कारण भारत गारत होगया है। आज संसार के सभी सभ्य मनुष्य बालविवाह के प्रतिकूल हैं। सो स्वामीजी ने भी गुड्डा गुड्डी का विवाह न करके रजस्वला होने बाद शुद्ध होजाने पर लिखा है जबकि वर वधू दोनों ही युवा युवति होंगे तो गर्भाधान होजाना भी स्वाभाविक है। जब विवाह का उद्देश्य ही सन्तान उत्पन्न करना है तो फिर इसमें लज्जा और संकोच की कौनसी बात है ?

(५) जैसे राजा महाराजाओं के अंगरक्षक (बाडीगार्ड)

होते हैं इसी प्रकार दुलहा भी वारात का राजा होता है और उसका भी एक दृढाङ्ग= लट्ठधारी पुरुष संरक्षक रहना चाहिये सो अग्निपरिक्रमा के समय वह पुरुष भी वर वधू के साथ परिक्रमा करता है यह एक विधि है। कदाचित् हवन का अग्नि वस्त्र आदि में न लग जाए इसी कारण वह पुरुष पानी का घड़ा साथ रखता है जिससे आवश्यकता पड़ने पर उसे वुझा सके। इसमें शङ्का की क्या बात है ? प्रत्येक कार्य्य में सावधानी तो रखनी ही चाहिये सो पानी का घड़ा भी एक संभव आपत्ति से सुरक्षित रहने के लिये पेशवन्दी है,। हवन से फैलने वाले सुगन्धित वातावरण के सेवनार्थ यदि वर कन्या के अतिरिक्त अन्य उपस्थित महानुभाव भी अग्निकुण्ड की परिक्रमा करें तो इसमें हानि क्या है ? उल्टा अनन्त लाभ है !

(६) स्वामी जी ने जो एक दूसरे के 'उपस्थ' का स्नान कराना लिखा है वह ठीक ही है। क्योंकि 'उपतिष्ठति अनेनेति उपस्थः' अर्थात् जिस के द्वारा किसी को पेश किया जासके– वह 'उपस्थ' होता है। यह लक्षण शरीर पर घटित होता है विवाह संस्कार से पूर्व शुद्ध हो जाना आवश्यक है अतः वर वधू को स्नान करना ही चाहिये। यहां शहद मीठा आदि डालना कहीं भी नहीं लिखा, पंडित जी अपनी तर्फ से मिलाते हैं। महाराज ! शिवलिङ्ग का पंचामृत से स्नान कराना तो आपके यहां ही लिखा है और सनातनधर्म्मी ही ऐसा करते हैं। हमारे यहां तो वर वधू का स्नान करना मात्र लिखा

है जो किसी भी दृष्टि सें निन्द्य नहीं कहा जा सकता। मालूम नहीं पण्डित जी को ऐसी सीधी सादी उपयोगी विधियों में भी क्या बुराई दीख पड़ती है जो आक्षेप करते हैं।

(७) यह सब जानते हैं कि पतिपत्नी के बीच में कुछ भी अन्तर नहीं रहता है। सो यदि स्वामी जी ने एक खास संस्कार के समय अपनी पत्नी के शिर में तेल डालकर उसके बाल ठीक कर देने की आज्ञा दी है तो इस में क्या बुराई है? पति पत्नी परस्पर एक दूसरे को अलंकृत एवं साफ सुथरा देखना पसन्द करते हैं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी शरीर को स्वच्छ रखना और बालों को चिकने रखना अतीव लाभदायक है। ऐसी दशा में यदि दम्पती एक दूसरे के स्वास्थ्यवर्द्धक उपचारों में सहयोग प्रदान करें तो यह तो और भी खुश-किस्मती समझनी चाहिये। स्वामी जी की यह आज्ञा भी दम्पती के गार्हस्थ्य सुखों को प्रवृद्ध करने की एक आदर्श प्रणालि है। फिर यह सब का सब विधान सूत्र ग्रन्थों के भी अनुकूल है, सनातनधर्म्मियों में भी ऐसा ही किया जाता है। न जाने पण्डित जी ने क्या समझ कर यह प्रश्न उपस्थित किया है?

(८) प्रायः देखा जाता है कि स्त्रियें घृत दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थों के खाने में कम रुचि रखती है, खासकर सगर्भा स्त्रियें तो खटाई मिरच आदि से बने हुवे चटपटे

पदार्थों की इतनी शौकीन हो जाती हैं वे दूध घी का नाम सुनते ही ग्लानि प्रकट करने लग जाती हैं, कई एक मिट्टी तक खाने लग जाती हैं ये बातें न्यूनाधिक प्रायः सभी प्रदेशों की स्त्रियों में पाई जाती हैं। ऐसी दशा में संरक्षकों के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे हानिकारक खट्टे चरपरे पदार्थों को छुड़ा कर घी खिलाने की व्यवस्था करें तो इस संस्कार में भी खिचड़ी में डालकर घी खिलाने का विधान किया गया है, खिचड़ी ही एक ऐसा पदार्थ है कि जिस के संयोग से आसानी के साथ पर्य्याप्त मात्रा में घृत खिलाया जा सकता है, सो जब स्त्री के आगे घी खिचड़ी रखदी जावे और वह खाने में आना कानी करे तो पतिदेव उसे कहे कि 'किं पश्यसि' अर्थात् क्या देखती है ? झट पट खाजाओ। यह बात सुनिश्चित है कि पौष्टिक पदार्थों के सेवन से ही संतान पैदा कर सकने की शक्ति बढ़ती है घी उन सब में श्रेष्ठ है। वेदादि शास्त्रों में 'आयुर्वैघृतम्' अर्थात्-घृत को आयु वर्द्धक क्या साक्षात् आयुः ही कहा गया है। इसी लिये पत्नी उत्तर देती है 'प्रजां पश्यामि' अर्थात्- इस घी में मुझे सन्तान दीख पड़ती है, यह तो अतीव शिक्षाप्रद विधान है, इस में शङ्का की कौन सी बात है ?

इस प्रकार मैंने पण्डित जी के समस्त प्रश्नों के युक्तियुक्त एवं वेद प्रमाण सहित उत्तर दे दिये हैं आशा है अब शङ्का का कुछ अवकाश न रहेगा।

प्रश्नोत्तर का निष्कर्ष—

(१) प्रथम प्रश्नके उत्तर की समालोचना करते हुवे 'ं०-माधवाचार्य्यजी ने कहा कि स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में यह कहीं भी नहीं लिखा कि बीमारी की दशा में अथवा फोड़े फुन्सी की दशा में वैद्य के आदेशानुसार आवश्यकता पड़ने पर शिखा काटी जासकती है—अपितु यहां तो साफ दर्ज है कि 'गर्म देशों में चुटिया कटादी जाय, क्योंकि शिर पर वाल रखने से बुद्धि कम होजाती है। हम नहीं समझते कि कोट बूट पतलून और हैट पहिनने से तो गर्म्मी सताएगी नहीं—परन्तु चुटिया के दश वाल शिर में चक्कर पैदा कर देंगे ? क्या वे आतिशबाजी के पुलिन्दे हैं ? अथवा विजली के स्विच हैं ? इसके अतिरिक्त हमारे प्राचीन महर्षि प्रायः जटाधारी होते हुवे भी बुद्धि में अद्वितीय थे अब भी रवीन्द्रनाथ टैगौर जैसे केश-धारी व्यक्ति बुद्धिसत्ता में अपनी उपमा नहीं रखते। फिर स्वामीजी की यह मन्तक कि शिर पर वाल रहने से बुद्धि कम होजाती है कोरी कल्पना नहीं तो और क्या है ? यदि आपके कथनानुसार क्षणमात्र के लिये शिखा केवल झण्डा ही मान लिया जाए तब भी झण्डा हमेशा किले के ऊपर फहराता ही रहना चाहिये तभी राजा की शोभा है। वह झण्डाधारी किस काम का जोकि अपने विजयचिन्ह को अपने ही हाथों उतार कर गन्दी नाली में फैंक डालने की मूर्खता करे।

महाशयजी ने जो 'यत्र वाणाः संपतन्ति' मंत्र पेश करते हुवे यह अर्थ किया है कि 'युद्ध में वाण ऐसे गिरते हैं कि जैसे शिखा रहित वालक'। सो महा अशुद्ध है क्योंकि सब जानते हैं कि वाणों के पीछे अनेक प्रकार के 'पर' लगे रहते हैं जिनके कारण वे वेगपूर्वक वायु में उड़ते हैं सो शिरमुंडे गोलमठोल खोपड़ीवाले वालको के साथ पुंखवाले वाणों को उपमित नहीं किया जासकता इसलिये 'विशिखाः' शब्द का अर्थ– 'विवृद्ध-शिखाः' अर्थात् लम्बी शिखा वालेही उपयुक्त है स्वामीदयानन्द-जी ने भी अपने यजुर्भाष्य में यह अर्थ स्वीकार किया है, सो लम्बी शिखा वाले वालकों की भांति वाण भी 'पुँख' सहित यत्र तत्र दौड़ते हैं यही वर्णन स्वाभाविक है (इसप्रकार– बुद्ध-देव जी 'भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः' के अनुसार अर्थ का अनर्थ करने पर भी शिखा छेदन का समर्थन नहीं कर सके) सनातनधर्म्मियों में केवल संन्यासियों और विधवाओं के लिये ही मुण्डन का विधान है तदनुसार वह किया जाता है परन्तु स्वामीजी तो सर्व साधारण के लिये ऐसा आर्डर देते हैं जो न सिर्फ वेदविरुद्ध है अपितु अप्राकृतिक भी है। (इसपर महाशयजी ने दयानन्दभाष्य का हवाला पूछा जो उसी समय यजुर्वेदभाष्य (१७।४८) निकाल कर दिखा दिया गया) इस प्रकार दयानन्द के शब्दों में भी 'विशिखाः' शब्द का पाठिक अर्थ 'बहु चोटियों वाले' देख कर महाशयजी अवाक् रह गए और अन्त तक कुछ भी न कह पाए।

(२) दूसरे प्रश्न के उत्तर की आलोचना करते हुवे सनातनधर्म्म की तरफ से पूछा गया कि 'सत्यार्थ प्रकाश' में यह तो कहीं भी नहीं लिखा कि– 'दूध की कमी के समय अथवा माता के रोगिणी होने की दशा में ही धाया दूध पिलाए' – यदि ऐसा लिखा होता तो फिर शङ्का की कुछ भी बात न थी, क्योंकि उपर्य्युक्त आपत्तियों की हालत में तो प्रायः सभी धाया का दूध पिलाना आवश्यक समझते हैं परन्तु स्वामी जी का तो सर्व साधारण के लिये और तन्दुरुस्ती की दशा में भी छः दिन के बाद 'प्रसूता दूध न पिलाए' ऐसा नादिरशाही फरमान है। कदाचित् दूध की कमी किंवा रोग के कारण धाया का दूध पिलाने का स्वामी जी का अभिप्राय होता तो फिर उसमें 'छः दिन' की कैद की आवश्यकता न थी, क्यों कि आवश्यकतानुसार पहिले दूसरे दिन भी धाया का दूध पिलाने की जरूरत पड़ सकती है फिर 'छः दिन तक पिलाए और इसके बाद न पिलाए' – ऐसी व्यवस्था का क्या तात्पर्य्य ? स्वामी जी ने तो इस प्रसङ्ग में स्वयं स्पष्ट कर दिया है कि 'ऐसा करने से दूसरे महीने पुनरपि युवति हो जाती है' – अर्थात् स्वामी जी प्रसूता को दूध न पिलाने की इस लिये शिक्षा देते हैं कि जिस से दम्पती के कामोपभोग में कुछ भी बाधा न पड़े। इस पर महाशय जी ने पूछा कि 'सत्यार्थ-प्रकाश' में यह कहां लिखा है कि 'प्रसूता दूध न पिलाए'। तुरन्त ही सत्यार्थ प्रकाश (पृ० २४) खोल कर

दिखाया गया जहां कि 'प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे' यह अक्षरशः लिखा है।

बुद्धदेव जी प्रत्येक टर्न में काफी हाथ पांव मारते रहे परन्तु अन्त तक 'छः दिन की व्यवस्था' का कुछ भी समाधान नहीं कर सके, उल्टा घवड़ा कर अंड वंड वोलते हुवे कह वैठे कि छः दिन तक दूध पिलाने का मतलब यह है कि हम छः दिन ट्राई करके देखते हैं इसी कारण 'छठी का दूध' ऐसा महावरा मशहूर है, जो है सो है। (उपहास)

इसके अतिरिक्त सनातनधर्म्म की ओर से कहा गया कि हमने जो माता द्वारा वच्चे को दूध पिलाए जाने के समर्थन में 'उत्संजुषस्व' आदि वेद मंत्र पेश किया है महाशयजी उसे चुटकियों में उड़ाना चाहते हैं, ध्यान रहे स्वयं स्वामी दयानन्द-जी ने इस मंत्र को संस्कार विधि में माता द्वारा वच्चे को दूध पिलाने में विनियुक्त किया है ऐसी दशा में स्वामीजी को भी धता वताकर मनमाना अर्थ करना महाशयजी की जवरदस्ती है।

(३) तीसरे प्रश्न के उत्तर की आलोचना करते हुवे पं०माधवाचार्य्य जी ने कहा कि स्वामीजी ने जो स्तनों पर लेप और योनि संकोचन करने की शिक्षा दी है वह किस वेद में दर्ज़ है— यही हमारा प्रष्टव्य है,। आयुर्वेद आदि शास्त्रों में तो सभी रोगों के उपाय लिखे हैं परन्तु आर्य्यसमाज तो केवल मन्त्र-संहिता मात्र को वेद मानता है और अपने ग्रन्थों के तदनुसार

वैदिक होने का दावा रखता है ऐसी दशा में महाशयजी को वे वेदमंत्र पेश करने चाहिये थे जिसमें कि ऐसी आज्ञा मौजूद हो, इसके अतिरिक्त किस किस औषधि का स्तनों पर लेप किया ज.ए तथा योनि संकोचनार्थ किन २ दवाओं की पोटली वनाई जाए— यह सव रहस्य भी स्पष्टतया वेद से सिद्ध करना चाहिये था परन्तु महाशयजी वाएं दाएं की वातें वनाकर प्रश्न टालना चाहते हैं। (जनता में अट्टहास) म०वुद्धदेवजी ने 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' आदि जो मंत्र पेश किया है उसमें न तो स्तनों पर लेप करके उन्हें कठिन करने की और नाहीं योनि को संकुचित करने की ही अश्लील आज्ञा दी है, महाशयजी व्यर्थ ही कोकशास्त्रीय वातों की वकालत करके वेदों को वदनाम करते हैं। स्वयं स्वामी दयानन्दजी ने भी इस मंत्र के अर्थ में स्तन कठिन करना और योनिसंकोचन करना नहीं लिखा। (इसपर— म०रामगोपाल विद्यालङ्कार गुरुकुल कांगड़ी के वनाए हुवे 'संस्कार-प्रकाश' से उपर्युक्त मंत्र का अर्थ पढ़ कर सुनाया गया)

(४) चौथे प्रश्न के उत्तर की आलोचना करते हुवे सनातनधर्म्म की तरफ से कहा गया कि प्रकृत विषय— 'कन्याओं का विवाह रजस्वला होने से पूर्व होजाना चाहिये अथवा रजस्वला होने के पश्चात्— ' यह नहीं है अतः हम विषयान्तर करके इस तरफ नहीं जाना चाहते, प्रश्न तो सिर्फ यह है कि- स्वामी जी ने विवाह का दिन वही नियत करना लिखा है

जिस दिन कि रजस्वला कन्या शुद्ध स्नान कर चुकी हो, सो पूर्व से ही सुनिश्चितरूपेण वह दिन नहीं जाना जा सकता अतः दयानन्दोक्त व्यवस्था के अनुसार आर्य्यसमाजी लोग अपने यहां पहिले से विवाह की कोई भी तिथि नियत नहीं कर सकते। इस तरह स्वामी जी की यह शिक्षा न केवल वेदवाह्य है अपितु वर्ताव में आ सकने लायक भी नहीं। महाशय जी ने हमारे इस प्रश्नांश का कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

साथ ही– पिता घर में किंवा जनवासे में विवाह-संस्कार के सम्पन्न होते होते तत्काल ही जो वर वधू का हमविस्तर हो जाना लिख मारा है यह भी ईसाईयों की नकलमात्र है आर्य्य ग्रन्थ तो स्पष्ट शब्दों में 'अक्षारलवणाशिनौ' अधःशायिनौ निवृत्तमैथुनौ भवतः' अर्थात्– वर वधू विवाहानन्तर क्षारलवण आदि वीर्य्यनाशक द्रव्यों को न खाएं, जमीन पर शयन करें और मैथुन न करें– ऐसी आज्ञा देते हैं। महाशयजी वताएं कि यह– 'चट्ट रोटी पट्ट दाल' इधर विवाह और उधर गर्भाधान की लज्जापूर्ण असभ्यता किस वेद मन्त्र में दर्ज है।

निःसन्देह विवाह का अन्यतम प्रयोजन सन्तान उत्पन्न करना भी है परन्तु वह मर्य्यादापूर्वक ही होना चाहिये, अपने घर में यथासमय सभी एकान्त सेवन करते हैं परन्तु यह कहां की सभ्यता है कि इधर तो विवाहसंस्कार के समय माता पिता गुरुजन इष्टमित्र आदि जमा हुवे बैठे हैं और उधर

दुलहा महाशय अपनी पत्नी का सब के सामने हाथ में हाथ पकड़ कर अन्धेरी कुठड़िया में जाने को उतावला हो जाए [जनता में अट्टहास– महाशय जी का मुँह फक्क हो गया और लज्जा के मारे बगलें झांकते खामोश रह गए]

(५) पांचवें प्रश्न के उत्तर की आलोचना करते हुवे पं० माधवाचार्य्य जी ने कहा कि– जनता इस बात को नोट करले कि महाशय जी स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि वास्तव में दयानन्दोक्त विवाह विधि के अनुसार कन्या को अपने पति के अतिरिक्त एक दूसरे लठ्ठधारी महाशय के साथ भी फेरे लेने पड़ते हैं। यह कहां तक उचित है इस बात का निर्णय तो जनता स्वयं ही करे मैं कुछ न कहूंगा। हां! इतना अवश्य कह देना चाहता हूं कोई भी प्रतिष्ठित हिन्दू अपनी कन्या को एकाधिक पुरुष के साथ फेरे देना कभी पसन्द न करेगा।

रहा वर का राजा होना, और उसके साथ किसी अङ्ग-रक्षक मनुष्य की आवश्यकता, सो सभी वाराती वर के हित-चिन्तक होने चाहिये, और प्रायः होते हैं लेकिन इसका यह तात्पर्य्य नहीं कि यदि राजा साहिब रानी साहिबा के साथ एकान्त सेवन करने लगें तो 'बाडी गाड' साहिब भी 'दही-भात में मूसलचन्द बनने को तैयार हो जाए! यदि वह लट्ठधारी अङ्गरक्षक मण्डप में एक ओर खड़ा रहकर भी वर साहिब की देखरेख रखता रहे तो भी उसकी ड्यूटी अदा

हो सकती है परन्तु स्वामी जी तो उसे साथ २ फेरे ले लेने को भी प्रेरित करते हैं जिस से कि इस पत्नी में ई महाशय जी का भी बराबर का हक कायम हो जाए !

आग लग जाने की भी बुद्धदेव जी ने खूब कही, । यदि वास्तव में हवन की अग्नि भड़क ही उठे तो फिर इस लट्ठधारी का एक मात्र पानी का घड़ा उसे कहां तक शान्त कर सकेगा, इस के लिये तो दयानन्दी भाइयों को पहिले से ही कुछ माशकी तैनात रखने चाहियें तथा म्यूनिसिपल कमेटी के 'दमकल' (आग बुझाने के इंजन) भी मंगा लेने चाहियें [जनता में अट्टहास—समाजी आखें चुराने लगे— म० बुद्धदेव जी खूब झेंपे]

(६) छठे प्रश्न के उत्तर की आलोचना करते हुवे सनातनधर्म्म की तरफ से कहा गया कि— 'उपस्थ' शब्द का अर्थ मूत्रेन्द्रिय है यह मैं आर्य्यसमाजी विधानों के ग्रन्थों से सिद्ध करने को तैयार हूँ। लीजिये! यह दयानन्दकृत 'संस्कार—विधि' का भाषा टीका 'संस्कार प्रकाश' मेरे पास विद्यमान है इस के प्रणेता गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक म० रामगोपाल विद्यालङ्कार हैं और यह पुस्तक समाजियों के 'वैदिक—प्रेस' कलकत्ता में छपा है इस में स्पष्ट लिखा है कि "हे स्त्री, मैं तेरे उपस्थेन्द्रिय को प्रेम से युक्त करता हूं। सन्तानोत्पत्ति का यही द्वितीय द्वार रूप है।" — अब महाशय जी बताएं कि यह लीला कहां तक शिष्टाचारानुमोदित है ?

म०बुद्धदेवजी मुझपर एतराज़ करते हैं कि इस मंत्र में शहद शराव मीठा आदि नहीं लिखा 'महाशय जी! मूलमन्त्र में ही 'मधु' शब्द विद्यमान है, जिसका अर्थ रामगोपालजी ने 'प्रेम' से युक्त करता हूँ'– ऐसा किया है, वास्तव में 'मधु' शब्द का अर्थ 'शहद' 'शराव' 'मीठा' आदि ही होना चाहिये यह वात सभी संस्कृतज्ञ भली भान्ति समझ सकते हैं ऐसी दशा में 'इमन्ते उपस्थं मधुना संसृजामि' इस मंत्रांश का स्पष्ट अर्थ यही होगा कि वर कन्या के प्रति और कन्या वर के प्रति कहती है कि 'मैं तेरे मूत्रेन्द्रिय को मधु= शहद= शराव= मीठे से युक्त करता हूं' — (जनता में उल्लास)

रहा हमारा शिवलिङ्ग को पंचामृत से स्नान कराना–सो वह आपका अभिमत 'लिङ्ग'= मूत्रेन्द्रिय नहीं है वल्कि 'लीनार्थ-गमकं चिन्हं लिङ्गमित्यभिधीयते' इस शिवपुराणोक्त निर्वचन के अनुसार लीन= ब्रह्म की गमक= वोधक ब्रह्माण्डाकार भगवत् प्रतिमा है जिसकी उपासना करना प्रत्येक वेदाभिमानी का कर्तव्य है सो कहां शिवप्रतिमा का पंचामृत से स्नान कराना रूप पुनीत धर्म्म कृत्य! और कहां वर कन्या के अपवित्र मूत्रेन्द्रियों पर शहद, शराव, मीठा, और पानी डालने का सभ्यता शून्य नंगा नाच!! 'कहां राम राम और कहां टाँय टाँय' [जनता में हर्षध्वनि– वुद्धदेवजी को फिर किसी टर्न में इस प्रश्न को छूने तक की भी हिम्मत न पड़ी वार वार याद दिलाने पर भी चुप साधे रहे]

(७) सातवें प्रश्न के उत्तर की आलोचना में सनातन धर्म्म की तर्फ से कहा गया कि म०बुद्धदेवजी प्रश्न को टालने के लिये कभी सूत्रग्रन्थों की शरण में जाते हैं कभी वैद्यक का वहाना करते हैं और कभी पति पत्नी के दर्म्यान कुछ भी पड़दा न होने की मन्तक लड़ाते हैं क्षणमात्र के लिये यह सब वहाने ठीक मान लेने पर भी हमारा मूल प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहता है कारण शास्त्रार्थ का विषय तो यह है कि स्वामीजी की ये शिक्षाएं किस वेदमंत्र के आधार पर हैं सो आप कोई वेदमंत्र पेश नहीं कर सके और नांही अन्त तक कर सकेंगे ऐसा मेरा दावा है। ऐसी दशा में जनता को यह समझने का पूरा अधिकार है कि महाशयजी इस विधान को वैदिक नहीं सिद्ध कर सके जिससे समाज का पक्ष गिर गया है, अब भी बताएं आपके पास पत्नी का शिरगूँथने का समर्थक कोई वेद मंत्र मौजूद है? (चुप) 'हां' या 'ना' में उत्तर दीजिये! (सन्नाटा) [इसपर सभाध्यक्ष ने प्रार्थनापूर्वक कहा कि जनता सब कुछ समझ रही है अतः अधिक विवश मत कीजिये]

(८) आठवें प्रश्न के उत्तर की आलोचना में पं०माधवाचार्य्यजी ने कहा कि महाशयजी ने छायादान खाजाने की उपहासास्पद विधि को बड़ी ही सफाई के साथ उड़ाने का प्रयास किया है। तथा 'किं पश्यसि' और 'प्रजां पश्यामि' वाक्यों की सङ्गति विठाने के लिये खासा नाटक रचना कर डाली है परन्तु इस विधान के समर्थन में भी कोई वेदमंत्र पेश न कर सकने

की निर्वलता से आपकी यह सब कल्पना 'अलिफलैला' से अधिक वजनदार नहीं बन सकी इसलिये सब प्रयत्न व्यर्थ ही रहा। अस्तु अब आपकी कल्पना की भी कलई खोलता हूं- यदि पत्नी को घी खिचड़ी खिलाना सिखाने मात्र के लिये ही यह सब बवन्डर रचा गया है तो फिर खिचड़ी में पड़े हुवे घी के बीच में स्त्री को अपने मुख की परछांही ताकने की क्या आवश्यकता थी? स्वामीजी तो साफ लिखते हैं कि 'गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिविम्ब उस घी में देखे' अब बताइये! ऐसा किये विना यदि घी खाया जाए तो क्या वह पुष्टिप्रद नहीं रहता? इसके अतिरिक्त यदि आपके कथनानुसार घृतादि खाने से दिल चुराने वाली स्त्री को समझा बुझाकर घी खिलाना ही इस नाटक का अभिप्राय है तो फिर तो यह अच्छा होता कि वह घी खिचड़ी में भली भान्ति मिला दिया जाता जिससे वह स्त्री उसे देख भी न पाती और खुशी से खिचड़ी खा जाती। मेरे विचार में स्वामी दयानन्द की व्यवस्था के अनुसार खिचड़ी में गड्ढा बनाकर उसे लबालब घी से भर डालना फिर खाने वाले के सामने पेश करना अवश्य ही रुचि को नष्ट करना है, इस रीति से तो घी खाने का स्वभाव रखने वाला मनुष्य भी भरे हुवे गड्ढे को देख कर ग्लानि अनुभव करने लगेगा जनता ज़रा गहरी दृष्टि से इस पर विचार करे।

महाशय जी ने 'किं पश्यसि' वाक्य को जिस टोन में अदा किया है स्वामी जी का ऐसा अभिप्राय नहीं है, यदि

संस्कार विधि में 'किं पश्यसि भद्रय' ऐसा वाक्य होता तो अवश्य ही बुद्धदेव जी के कथनानुसार 'क्या देखती है खाजा' ऐसा कहना फब जाता परन्तु वहां ऐसा नहीं है बल्कि उस घी में जो पत्नी के मुख का प्रतिबिम्ब दीख रहा है उसी को लक्ष्य करके पति महाशय पूछते हैं कि 'किं पश्यसि' अर्थात्– क्या देखती है? यानी तुझे इस में क्या कुछ दीख रहा है?। हमारे तात्पर्य्य की पुष्टि पत्नी के उत्तर से खूब हो जाती है वह कहती है 'प्रजां पश्यामि' अर्थात्– सन्तान देखती हूँ सो यदि बुद्धदेव जी की कल्पना के अनुसार 'किं पश्यसि' का अभिप्राय 'क्या देखती है खाजा'– ऐसा होता तो पत्नी को उत्तर में कहना चाहिये था कि 'जी मचलता है– मितली आती है'। आशा है श्रोतागण इस वाक्य योजना पर विशेष ध्यान देने की कृपा करेंगे। [जनता में हर्ष ध्वनि, समाजी स्तम्भित से रह गए, महाशय बुद्धदेव जी प्रत्येक टर्न में अपनी पुरानी बातों को ही दुहराते रहे परन्तु जनता प्रश्नोत्तर की तह तक पहुंच चुकी थी अतः कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा].



चौथा-शास्त्रार्थ

विषय— 'मूर्ति पूजा'

म० बुद्धदेव विद्यालङ्कार के प्रश्न

आज का विषय मूर्तिपूजा है। बुतपरस्ती से जो नुकसान हैं मैं उन सब को पेश करता हूं आशा है पण्डितजी जवाब देने की कृपा करेंगे।

(१) मूर्ति पूजा से पहिली हानि यह है कि वह हमें ईश्वर से निडर करके पाप करना सिखाती है जैसे पुराणों में वर्णन आता है कि:—

(क) एक वार एक शिव पूजक मर गया, वह पापी था, उसे पकड़ने के लिये इधर यमदूत आए उधर शिवदूत आपहुँचे

दोनों में खूब झगड़ा हुवा आखीर शिवदूतों की जीत हुई उन्हों-ने आर्डर दिया कि जो कोई त्रिपुण्ड भस्म और रुद्राक्ष धारण करने वाला हो– फिर चाहे वह कितना ही पापी क्यों न हो– तुम उसे मत पकड़ना ।

अगर कोई सरकारी चपड़ास पहिन कर किसी भलेमा-नस को क़त्ल करदे तो गवर्नमेण्ट उसे कभी मुवाफ़ नहीं कर सकती परन्तु पुराण की यह कथा शिव पूजक को पाप करने की खुली छुट्टी देती है। क्या न्यायकारी सर्वशक्तिमान् परमा-त्मा के विषय में यह सम्भव होसकता है ?

(ख) एक भिखारिन चाण्डाल कन्या को एक दिन भीख न मिलने के कारण विवशता से भूखी रहना पड़ा ! मांगने पर किसी मनुष्य ने उपहास में उसके हाथ पर एक बिल्वपत्र रख दिया जो चिढ़ कर इस कन्या ने परे फैंक दिया और इत्तिफाक से वह बिल्वपत्र निकटस्थ शिवलिङ्ग पर जा गिरा क्षुधातुर होने के कारण रातभर नींद भी न पड़ी– जिस रोज यह घटना घटी संयोगवश उस दिन शिव रात्रि थी– बस ! फिर क्या था यह लाचारी से भूखों मरना उपवास होगया- कूड़े करकट की तरह झुंझला कर पटका हुवा बिल्वपत्र पूजन होगया, और भूख सरदी से रातों जगना जागरण होगया, और वह इस पुण्य से सीधी शिव-लोक को चली गई ।

(ग) ऐसी ही कथा श्रीमद्भागवत में अजामिल पापी की लिखी है, वह जन्म से शराबी कबाबी व्यभिचारी रहा

परन्तु अन्त में मरते समय अपने बेटे नारायण को एक बार आवाज देने मात्र से नारायण भगवान् प्रसन्न होगए और सब पाप क्षमा करके वैकुण्ठ को लेगए।

(घ) पद्म पुराण (उ० २७२ अ०) में कथा आती है कि जिस समय रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक हुवा तो अनेक मुनि उनके सुन्दर रूप को देख कर मोहित हो गए और रामचन्द्र जी से प्रार्थना की कि आप हम से संग कीजिये, इस पर उत्तर मिला कि इस अवतार में ऐसा न करूंगा, हां! द्वापर युग में तुम गोपिका बनना मैं कृष्ण बन कर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा सो वैसा ही किया गया। भागवत में साफ लिखा है कि काम से क्रोध से भी जो भगवान् को स्मरण करता है उसका भी कल्याण होता है, जैसे– कामासक्त गोपियों का और क्रोधी शिशुपाल का हो गया था। कहिये! पण्डित जी जब आपके यहां ऐसी २ शिक्षाएं मौजूद हैं फिर कोई कैसे अपने सदाचार को कायम रख सकता है!

(२) मूर्तिपूजा करने में दूसरी हानि यह है कि वह हमें असली परमात्मा की उपासना से हटा कर जड़ वस्तुवों के उपासक बनाती है जिस के करने से हम घोर अन्धकार में गिर जाते हैं वेद कहता है—

अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।

अर्थात्– जो जड़ प्रकृति से बनने वाले पदार्थों की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार के गड्ढे में गिर जाते हैं।

तभी तो विदेशी लोग हम पर आक्षेप करते हैं कि देखो ! परमात्मा संसार के समस्त पदार्थों को बनाता है परन्तु मूर्ति पूजक हिन्दू परमात्मा को बनाने की हिम्मत करते हैं।

(३) मूर्ति पूजा में तीसरा दोष यह है कि जिन देवी देवताओं की मूर्तियें पूजी जाती हैं पुराणों में उन के आचार अतीव भ्रष्ट लिखे हैं इस लिये उपास्य देवता के दुराचारों का प्रभाव उपासना करने वाले के चरित्र पर भी अवश्य पड़ेगा, इस तरह मूर्तिपूजक दुराचारी होजाते हैं जैसे कुछ देवताओं के चरित्र उदाहरणार्थ पेश करता हूं।

(क) देवताओं का तो कहना ही क्या है पहिले देवगुरु की कथा सुनिये। बृहस्पति की भावज अति सुन्दरी थी आप ने उस से बलात्कार किया वह सगर्भा थी अन्दर बैठे बच्चे ने कहा कि चचा ऐसा मत कीजिये ! यहां पेट में दूसरे की जगह नहीं है, इतने पर भी जब बृहस्पति जी अपने नापाक इरादे से नहीं हटे तो गर्भस्थ बालक ने अपने पावों से रुकावट डाली बृहस्पति का मजा किरकिरा हो गया आपने अप्रसन्न होकर गर्भस्थ बालक को अन्धा होजाने का शाप दिया। तदनुसार दीर्घतमाः जन्मान्ध पैदा हुवे, गुरु जी का जो वीर्य्य बाहिर गिर गया था उस से भरद्वाज पैदा हुवे यह कथा महाभारत (आदि पर्व) में दर्ज है।

(ख) जिस सूर्य्य को नवग्रह पूजन करते हुवे मूर्तिपूजक

पूजते हैं ज़रा उसकी भी लीला सुनिये— सूर्य्य की भतीजी का स्वयंवर हुवा, भतीजी ने चचा को ही पसन्द किया। सूर्य्य ने कहा भतीजी से विवाह करना पाप है। वह बोली– ब्रह्मा ने अपनी बेटी से, विष्णु ने अपनी मा से और शिवजी ने अपनी बहिन से विवाह किया जिससे वे श्रेष्ठ होगए बस, दोनों का विवाह होगया।

(४) मूर्ति पूजा में चौथा दोष यह है कि मनुष्य के विचार तंग होजाते हैं और उसे परस्पर निन्दा करने की आदत पड़ जाती है शिव-पुराण लिङ्ग पुराण आदि शैवपुराणों में विष्णु के उपासकों की निन्दा लिखी है। यहां तक कि जो वैष्णव होकर शिव का पूजन करता है वह विष्टा का कीड़ा बनता है। इसी प्रकार भागवत पद्मपुराण आदि वैष्णव पुराणों में शिवोपासकों को आड़े हाथों लिया है! लिखा है कि वे नरक में पड़ते हैं। यही हाल अन्यान्य देवी देवताओं के उपासकों का दर्ज़ है ऐसी स्थिति में समस्त पुराणों का समन्वय करने पर यही सिद्धान्त स्थिर होता है कि ये सभी मूर्तिपूजक नरक में पड़ते हैं।

इस प्रकार मूर्तिपूजा करने से और भी कई प्रकार की हानियें हैं जिनका आगे चलकर जिक्र किया जाएगा वेदों में मूर्तिपूजा का कहीं उल्लेख नहीं तभी तो आर्य्य समाज इस अन्ध परम्परा का निषेध करता है। आशा है पण्डित जी महाराज मेरे समस्त प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करेंगे।

पं० माधवाचार्य्य शास्त्री के उत्तरः—

सज्जनो ! आपको मालूम है कि आज के शास्त्रार्थ का विषय 'मूर्तिपूजा' है जिसमें आर्य्य समाज को वेद प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करना चाहिये था कि ईश्वर की मूर्ति नहीं हो सकती अथवा वेद में मूर्ति पूजा न करने की आज्ञा दी गई है। परन्तु मेरे प्रतिपक्षी महाशय ने जितने प्रश्न किये हैं उनका मूर्तिपूजा विषय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि आपने पुराणों की कुछ कथाएं मनमाने ढंग से सुनाकर केवल यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि मूर्तिपूजा से अमुक २ हानियें होती हैं। महाशयजी यदि पुराणों के शास्त्रार्थ में ये प्रश्न उपस्थित करते तो उचित होता ! कल हम समाज के ऐसे २ प्रश्नों का उत्तर प्रदान कर ही चुके हैं, यदि इन प्रश्नों का भी कुछ उरमान बाकी था तो कल या परले दिन फिर खुशी से पुराणों पर शास्त्रार्थ कर सकते थे, अथवा आज ही यदि सभाध्यक्ष आज्ञा करें और महाशय जी मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ कर सकने की अपनी असमर्थता प्रकट करें तो हम प्रसन्नता पूर्वक इन सब प्रश्नों का उत्तर देने के लिये तैय्यार हैं परन्तु मूर्तिपूजा विषय कायम रखते हुवे इस प्रकार के प्रश्न करना स्पष्ट विषयान्तर में जाना है। यदि आज कोई विद्वान् शास्त्रार्थ का मध्यस्थ होता तो वह महाशयजी के प्रश्नमात्र सुनने के बाद विषयान्तर दोष के कारण आर्य्य समाज की पराजय घोषित कर देता ! अस्तु मैं जनता का ध्यान इस तर्फ

आकृष्ट करने के बाद अब महाशयजी के प्रश्नों का उत्तर देता हूं अगरचे विषय पर स्थिर रहते हुवे महाशयजी के विषयान्तरस्थ प्रश्नों का उत्तर देने की मुझ पर कुछ भी जिम्मेवारी नहीं है तथापि कुछ अपठित लोगों को किंवा स्वयं म०बुद्धदेवजी को भी अपने निस्सार प्रश्नों के वज़नदार होने का गर्व बाकी न रहे इसी लिये यह प्रयत्न है, सुनिये !—

(१) महाशयजी ने मूर्तिपूजा पर पहिला आक्षेप यह किया है कि मूर्तिपूजक ईश्वर से निडर होकर पाप करने लग जाता है। उदाहरण में आपने चार कथाएं पेश की हैं। महाशयजी का यह दावा सरासर ग़लत है क्योंकि जिन उदाहरणों के आधार पर आप अपने पक्ष की पुष्टि करना चाहते हैं उलटे वे उदाहरण आपके पक्ष को गिराते हैं! जनता अच्छी प्रकार समझती है कि वेदादि शास्त्रों में रोचक, भयानक और यथार्थ तीन प्रकार के वचन पाए जाते ह, ये सब कथाएं भी रोचक प्रणालि के अनुसार मनुष्यों को ईश्वर भक्त होने के लिये प्रेरित करती हैं, सो जैसे—

(क) पहिली कथा में लिखा है कि– भस्म रुद्राक्षादि धारण करने वाला मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होता है, ! इस का अभिप्राय यह है कि बाह्यचिन्हों का भी आचार के ऊपर पर्य्याप्त प्रभाव पड़ता है। यदि कोई मनुष्य मस्तक पर तिलक लगाए हो तो उसे शराब की दूकान पर बैठने, मीट मारकीट में जाते, एवं वेश्याओं के चकले में पांव रखते अवश्य ही

लज्जा आएगी कि लोग मुझे क्या कहेंगे ? एक सिपाही यूनी-फारम पहिने अवश्य ही कानून शिकनी से बचने की कोशिश करता है सो इस कथा में भी यही भाव प्रकट किया गया है कि ईश्वर के भक्त की दुर्गति नहीं होती और रुद्राक्षादि वाह्य साधन आभ्यन्तरिक निष्ठा को दृढ करते हैं तदनुसार उनके धारण की परमावश्यकता है।

यदि कोई सरकारी चपड़ास पहिन कर किसी को कत्ल करदे तो वह अवश्य ही मुवाफ नहीं किया जासकता उल्टा ऐसे कातिल को अधिक दण्ड दिया जाएगा क्योंकि उसने रक्षक होकर भक्षक का काम किया है। इसी प्रकार वाह्य चिन्हों को धारण करके दुराचार करने वाला मनुष्य भी ईश्वर के निकट क्षमा पात्र नहीं हो सकता परन्तु जिस प्रकार अभिनय के समय राजा का ड्रैस पहिन कर एक भिखमंगा नट भी अपने स्वांग के प्रतिकूल कभी कमीनापन प्रकट नहीं होने देता, ठीक इसी प्रकार– 'जस– का छिय तस. चाहिय-नावा' के अनुसार भगवद्भक्ति का वाह्य स्वांग धारण करने वाला भक्त भी अपने स्वरूप के प्रतिकूल कार्य्य करने में अवश्य ही लज्जा अनुभव करेगा। अर्थात् वे वाह्य साधन मनुष्य को स्वभाव सुलभ पतन से रोकने में सहायक सिद्ध होंगे।

(ख) चाण्डाल कन्या की इस रोचक कथा का भी एतावन्मात्र तात्पर्य्य है कि जब अनिच्छा से किया हुवा उपवास, पूजन और जागरण आदि भी मनुष्य की सद्गति में सहायक

होता है, तब यदि कोई भक्त विचारपूर्वक श्रद्धाभक्ति से भगवद् आराधना करे तो फिर उसका तो क्यों न उद्धार होगा ? । तात्पर्य्य यह है कि भला काम हर हालत में भला ही होता है, यदि आप अनजानपन में भी किसी का कुछ उपकार कर निकले तो वह भी आप के हक में अच्छा ही होगा।

(ग) यही भाव अजामिल की कथा का है, सो जब एक बार उपचार से भी ईश्वर का नाम मुँह से उच्चारित हो जाने के कारण महापापी का उद्धार हो जाता है तब निष्ठा-पूर्वक हरि नाम का संकीर्तन करने वाले व्यक्ति का तो क्यों नहीं उद्धार होगा ?

(घ) रामचन्द्र जी के स्वरूप को देखकर जो ऋषि मुग्ध हो गये थे वे कल्पान्तर में अवश्य ही गोपी बने इस में शङ्का की कौनसी बात है ? शायद आप को 'संग' शब्द देख कर कुछ अश्लील भ्रांति हो गई है वास्तव में संग के माने पवित्र मेल मिलाप है, आप के समाजी भजनीक प्रायः गाया करते हैं कि 'सदा तुम करते रहे सत्पुरुषों का संग'।

सो जब अनेक मुनियों को भगवान् के निरन्तर साहचर्य्य की इच्छा हुई तो उनकी अपरिपक्व भावना को देख कर भगवान् ने कल्पान्तर में उन्हें वैसा अवसर देने की बात कही और वह कृष्ण जन्म में पूर्ण हुई। पूरे दश वर्ष पर्य्यन्त भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों में निरन्तर रहे और अपनी अनेक बाल-लीलाओं से उन्हें संतुष्ट करते रहे। आपको इस विशुद्ध कथा

पर आक्षेप करने से पूर्व इतना तो विचार करना चाहिये था कि व्रजभूमि में गोपियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण जी का केवल दश वर्ष की आयुःपर्य्यन्त ही संसर्ग रहा है ग्यारहवें-वर्ष में तो वे कंसविध्वंसनार्थ मथुरापुरी में आ पहुंचे थे, और फिर आयुःभर में लौट कर कभी गोकल वृन्दावन नहीं गए थे। ऐसी दशा में दश वर्ष के वालक की शुद्ध लीला में केवल 'संग' शब्द के निर्वल आधार पर अश्लीलता की ऊंची मढ़ी खड़ी करना कहां तक उचित है !

इस प्रकार आपके प्रथम प्रश्न की आधारभूत चारों कथाओं का समाधान करने के बाद हम आप से ही पूछना चाहते हैं कि कहिये ! इन से मूर्तिपूजा का किस प्रकार खण्डन होता है ?

(२) आपका दूसरा आक्षेप यह है कि मूर्तिपूजा हमें असली ईश्वर की उपासना से हटाकर जड़ वस्तुवों का पुजारी वनाती है— महाशय जी ! ईश्वर तो एक ही है शायद आर्य्य-समाज में दो खुदा हों जो आप एक को असली ईश्वर कहते हैं और दूसरे को नकली समझते हैं (हास्य) वास्तव में सनातन धर्म्मी उसी एक ईश्वर के सच्चे पुजारी हैं हम जड़ वस्तुवों की उपासना नहीं करते, क्या आपने कभी किसी सनातनधर्म्मी को प्रतिमा के सामने ऐसी प्रार्थना करते सुना कि हे काले अथवा सफेद रंग के पत्थर ! पीतल एवं अन्योन्य धातु के पुतले ! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ ? कदापि नहीं वल्कि हम

तो प्रतिमा के सामने यही कहते हैं कि 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'। यदि हम वास्तव में पत्थर के भक्त होते तो पत्थर से बनी सड़कों पर शिर के बल चला करते और पत्थर के बने संडास में मलत्याग न करते! परन्तु हम तो आप की तरह पत्थर को तो पत्थर ही समझते हैं। हां! सर्वव्यापक होने की हैसियत से जो प्रभु मूर्ति में भी विराजमान है उस की पूजा अवश्य करते हैं जैसे शरीरस्थ चेतन जीवात्मा को सन्तुष्ट करने के लिये जड़ शरीर के अमुक २ अङ्गों पर ही तत्तत् क्रियाएं की जानी आवश्यक हैं डाइरेक्ट जीव को किसी प्रकार भी प्रसन्न नहीं किया जा सकता ठीक इसी प्रकार ब्रह्माण्ड नामक उस सर्वव्यापक चेतन परमात्मा की उपासना के लिये भी ब्रह्माण्ड की किसी स्थूल वस्तु को साधन बनाने की आवश्यकता है। तभी तो योगदर्शन में स्पष्ट लिखा है कि—

यथाभिमतध्यानाद्वा।

अर्थात्– अपनी २ रुचि के अनुसार किसी भी पदार्थ-विशेष के निरन्तर ध्यान से मलविक्षेप आवरण का तिरोभाव होता है।

महाशय जी! एक कागज तो अखबारात की रद्दी का होता है जिसे कार्य्यानन्तर उठा कर गन्दी नाली में फैंक देते हैं दूसरा नोट होता है जिसे बाहिफ़ाज़त पेटियों में रखते हैं। कागज समान होते हुवे भी यह विभेद सम्राट् की मूर्ति और

गवर्नमेन्ट की मुहर लगने के कारण हो जाता है ठीक इसी प्रकार जिस पाषाण पर प्यारे प्रभु की प्रतिमा अङ्कित हो गई और वेद शास्त्र की मुहर लग गई वह पाषाण होता हुवा भी सब का शिरोधार्य्य बन जाता है। इस लिये प्रतिमापूजन हमें असली ईश्वर की उपासना से हटाता नहीं वल्कि हमारे भ्रान्त मनः को एक केन्द्र में निश्चल करके यथासमय उस इन्द्रियातीत भगवान् की वांकी झांकी देख सकने की योग्यता प्रदान करता है।

महाशय जी ने प्रतिमापूजन का खण्डन करने के लिये वड़े ही ज़ोर के साथ 'अन्धंतमः प्रविशन्ति' आधा मंत्र पेश किया है यदि इस मंत्र का उत्तरार्द्ध भी पढ़ देते तो आनन्द आजाता। क्योंकि आपने इस मन्त्र के जिस 'असम्भूति' शब्द का अभिप्राय जड़ प्रकृति से वने पदार्थ वताकर मूर्तिपूजा का निषेध करना चाहा है उसी के अगले हिस्से में 'संभूति' के उपासकों के लिये और भी घोरतर अन्धकार में पड़ने का उल्लेख विद्यमान है सो यदि 'असम्भूति' का अर्थ जड़ प्रकृति है तो 'संभूति' तद्विरुद्ध चेतन सत्ता सिद्ध होगी। कहिये फिर किधर जाइयेगा ?। इस लिये इस मन्त्र में मूर्ति-पूजन के खण्डन की तो गन्ध भी नहीं वल्कि इसका अर्थ तो यह है कि जो मनुष्य 'असंभूति' अर्थात्– 'मरने पर कुछ भी शेष नहीं रहता' इस प्रकार के परलोकवादशून्य विचारों वाले होते हैं तथा जो 'संभूति' अर्थात् 'हम सदैव इसी प्रकार

विद्यानमान रहेंगे' इस प्रकार के 'अहंभाव' युक्त विचार वाले होते हैं वे दोनों ही अज्ञानान्धार में पड़ते हैं यही इस मन्त्र का आशय है।

(३) अब हम आपके तीसरे आक्षेप पर विचार करते हैं, आपका दावा है कि जिन देवताओं की पूजा की जाती है पुराणों में उनके चरित्र अतीव भ्रष्ट लिखे हैं जिससे उपासक भी दुराचारी होजाता है, यदि हम क्षणमात्र के लिये आपका यह दावा ठीक भी मानलें तो भी इस से मूर्तिपूजा के सिद्धान्त पर कुछ भी दोष नहीं आ सकता कारण जब तक आपको पुराणों का रहस्य समझने की क्षमता न हो तब तक आप उन भ्रष्ट जंचने वाले चरित्रों को एक तर्फ रखिये! यदि आपको यह विश्वास है- और होना ही चाहिये कि सूर्य्य भगवान् और श्रीकृष्ण भगवान् आदि में वस्तुतः कुछ भी दोष नहीं था बल्कि ये ऐसी दोषास्पद बातें सिर्फ पुराणकारों ने ही व्यर्थ लिख डाली हैं तो आप पुराणों को हमारे लिये रहने दीजिये और आप इन पवित्र देवताओं की उपासना कीजिए। आपके इस आक्षेप का तात्पर्य्य यह प्रतीत होता है कि आप को प्रतिमा-पूजन के सिद्धान्त पर तो कोई आपत्ति नहीं है परन्तु जिन देवताओं के चरित्र आप को भ्रष्ट जंचते हैं उनकी उपासना नहीं होनी चाहिये, यह आप चाहते हैं अस्तु इसका उत्तर तो सीधा है- जिन देवता के चरित्र के सम्बन्ध में पुराणों में कुछ आक्षेप योग्य बात दर्ज़ न हो तो उसकी उपासना करने में तो शायद

आपको कुछ भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये सो, आप नर्मदेश्वर की उपासना कीजिये ! विश्वक्सेन की उपासना कीजिये !! भगवान् रामचन्द्रजी की पूजा कीजिये !!! और भी आपको ऐसे सैंकड़ों नाम बताए जा सकते हैं कि छिद्रान्वेषण करने पर भी जिनके चरित्र पर आप कोई दोषाङ्कुर नहीं ढूण्ढ सकते। जनाव ! तेतीस कोटि देवताओं में से एक आध तो आपको विशुद्ध चरित्र वाला मिल ही जाएगा। यदि और कोई नहीं तो कम से कम स्वामी दयानन्द जी ने जो संस्कार विधि (नामकरण संस्कार) में सत्ताइस नक्षत्रों और पन्द्रह तिथियों के देवता लिखे हैं उनकी ही उपासना कीजिये। आशा है अब आप चरित्रों का बहाना करके मूर्तिपूजा से पराङ्मुख होने का साहस न कर सकेंगे ! अस्तु

अब अपने किये हुवे आक्षेपों का भी उत्तर सुनिये—

(क) आपने देवगुरु का उतथ्य पत्नी के साथ व्यभिचार करने का जो आक्षेप किया है इसका विस्तृत समाधान तो हमारे बनाए ग्रन्थ 'पुराणदिग्दर्शन' में मौजूद है खूब शौक से पढ़ सकते हैं, आपको विदित हो यह कथा वेद में इसी प्रकार लिखी है प्रमाणार्थ—

दीर्घतमा मामतेयो जजुर्वान्दशमे युगे

(ऋग्वेद अष्टक २ अनु० ३ व० १)

इत्यादि वेद मन्त्रों का स्वाध्याय कीजिये। वास्तव में

इस कथा का रहस्य यह है कि बृहस्पति रूप मनः अपने ज्येष्ठ भ्राता जीवात्मा की प्यारी पत्नी 'ममता' के साथ संयुक्त होना चाहता है परन्तु ममता के गर्भ में 'दीर्घतमाः' अज्ञान रूप घोर अन्धकार छुपा रहता है जो मन के प्रयत्न को विफल करना चाहता है परन्तु यदि मनः हठात् अपने प्रयत्न को जारी रक्खे तो फिर ज्ञानरूप भरद्वाज उत्पन्न होजाता है और अज्ञान अन्धा होकर ठोकरें खाता है।

न इस कथा में व्यभिचार है न बलात्कार है अपितु एक वेदोक्त आध्यात्मिक आख्यायिका का स्पष्टीकरणमात्र है।

(ख) सूर्य्य भगवान् का भतीजी से विवाह करना और ब्रह्मा विष्णु महेश का अपनी पुत्री, माता, बहिन से शादी करना यह आक्षेप भी व्यर्थ है क्योंकि यह कथा स्थूलशरीरधारी व्यक्तियों से सम्बन्ध नहीं रखती! सूर्य्य का भाई चान्द है यह सब जानते हैं और चान्द की लड़की रात है, वह स्वयंवर रचती है जिस में अनेक तारागण रूप दुल्हा सज कर उपस्थित होते हैं परन्तु वह किसी को भी पसन्द नहीं करती किन्तु सूर्य्य के पीछे ही लट्टू हुई घूमती है। आगे २ सूर्य्य और पीछे २ रात, इसी क्रम से यह जोड़ा घूमता है यही वैज्ञानिक भाव इस कथा में आलङ्कारिक रूप से प्रकट किया गया है।

इसी तरह शास्त्र में प्रकृति के चार भेद बतलाए हैं। रजोगुणात्मिका को 'भार्य्या' तमोगुणात्मिका को 'कन्या' सत्वगुणात्मिका को 'बहिन' और साम्यावस्था को 'माता'

कहते हैं। ब्रह्मादि देवताओं में से कौन किस प्रकृति का अधिष्ठाता है यही भाव प्रकट करने के लिये इस प्रसङ्ग में प्रकृति के तत्तद् भेदों को कन्या आदि नामों द्वारा प्रकट किया है। वेद में भी—

"पिता दुहितुर्गर्भमाधात्,
मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः"

आदि मन्त्रों में यही भाव प्रकट किया गया है। यही आपके तीसरे आक्षेप का उत्तर है।

(४) चौथा दोष आप यह लगाते हैं कि शैवपुराणों में विष्णु निन्दा और वैष्णव-पुराणों में शिव निन्दा दर्ज है जिस से परस्पर साम्प्रदायिक कलह फैलती है, यद्यपि इस प्रश्न का मूर्ति-पूजा विषय से कुछ सम्बन्ध नहीं हो सकता क्योंकि परस्पर निन्दा करना निन्दकों का काम है भले आदमी तटस्थ रह कर भी अपना कल्याण साधन कर सकते हैं, आर्य्यसमाज की घास और मांस पार्टी भी एक दूसरे की निन्दा करती हैं क्या इस कारण से वेदों को हेय कहा जा सकता है?

वास्तव में सम्प्रदाय भेद का मूल कारण अधिकारि-भेद है विभिन्न प्रकृति वाले मनुष्यों को अपनी अपनी रुचि के अनुसार कल्याण मार्ग में अग्रसर करना सम्प्रदाय परम्परा का उद्देश्य है परमार्थतः सभी सम्प्रदाय वाले एक अद्वितीय परमात्मा के ही उपासक हैं वेदों में भी सम्प्रदाय भेद का रहस्य प्रकट करने वाले अनेक मन्त्र विद्यमान हैं। यथा—

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।

अर्थात्– उस एक अद्वितीय परमात्मा को ही क्रान्तदर्शी लोग अनेक नाम रूपों द्वारा प्रकट करते हैं । आपने जो 'वैष्णवः पुरुषो यस्तु शिवमाराधयेद् द्विजः' आदि श्लोक पढ़ कर यह आक्षेप किया है कि इस में शिवपूजक वैष्णव को विष्टा का कीड़ा कहा है सो ठीक ही है क्योंकि अनन्य भक्ति के लिये अपने २ आराध्य देव की ही उपासना होनी आवश्यक है– यद्यपि "आकाशात्पतितं तोयम्" के अनुसार तत्तद् नाम रूप से की गई उपासना भी उस एक ही परमात्मा की उपासना में परिणत हो जाती है तथापि जैसे फौज पुलिस आदि महकमें एक ही सम्राट् के भक्त होते हुवे भी अपने २ महकमे के अधिकार के अनुसार ही अपनी ड्यूटी अदा करते हैं और एक दूसरे की यूनीफारम में अथवा ड्यूटी में दखल नहीं देते, कदाचित् कोई मदाखलत करे तो वह दण्डार्ह होता है ठीक इसी प्रकार तत्तत् सम्प्रदायों के अनुयायियों की समस्या है ।

इसके अतिरिक्त न केवल पुराणों में अपितु किसी भी धर्म्म ग्रन्थ में यदि निन्दापरिणत वचन दीख पड़े तो उन्हें पश्चात् प्रक्षिप्त मान कर फौरन अनुपादेय समझ लेना चाहिये यह बात स्व० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने अपने 'पुराणदर्पण' में श्री पं० कालूराम जी शास्त्री ने 'पुराण वर्म्म' में और मैं ने अपने परम प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पुराण दिग्दर्शन' में डंके की चोट घोषित करदी है ।

इस प्रकार हम आप के सब आक्षेपों का समाधान करने के वाद अव मूर्तिपूजा विषय को वेदादि शास्त्रों द्वारा सिद्ध करके दिखाते हैं। वेद में मूर्ति पूजा के अनेक अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं, यथा—

(A) त्र्यम्बकं यजामहे (यजुः ३।६०)

इस मन्त्र में तीन नेत्र वाले महादेव के पूजन का विधान विद्यमान है, किसी शरीरधारी मनुष्य के विषय में 'त्रिनेत्र' शब्द चरितार्थ नहीं हो सकता अतः यह मन्त्र अवश्य ही शिव भगवान् की उपासना का वोधक है। इसी प्रकार

(B) मुखायते पशुपते! यानि चक्षूंषि ते भव
(अथर्व ११।२।५-६)

इत्यादि मन्त्रों में प्रतिमा के मुखादि सब अङ्गों का उल्लेख विद्यमान है और उन्हें नमस्कार की गई है। शतपथ में (१४।२।१।-) में तो स्पष्ट ही महावीर की मूर्ति वनाकर यज्ञ के समय उसकी पूजा करनी लिखी है यथा—

(C) अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति तन्मृदश्चा-
पां च पंच महावीराः कृता भवन्ति।

इसी प्रकार बौधायन (परिचर्य्या प्रकरण सूत्र १) में तो स्पष्ट ही लिखा है कि—

(D) स्नात्वा शुचौ देशे गोमयेनोपलिप्य प्रति-
कृतिं कृत्वा अक्षतपुष्पैर्यथालाभमर्चयेत् ।

अर्थात्- स्नान करके पवित्र भूमि को गोमय से लीप कर मूर्ति माण्डनी चाहिये फिर उसका अक्षत पुष्पादि से पूजन करना चाहिये ।

इसी प्रकार और भी अनेकों प्रमाण मौजूद हैं जिन में ईश्वर की प्रतिमा को पूजने की आज्ञा दी गई है ।

षड्विंश (ब्राह्मण ५ । १०) में प्रतिमाओं के हंसते, रोते, दीख पड़ने पर शान्ति करनी लिखी है । भगवान् रामचन्द्र जी का स्थापित किया हुवा रामेश्वर धाम नौ लाख वर्ष से अधिक पुराना है जिस से मूर्तिपूजा का प्राचीनत्व सिद्ध होता है ।

मूर्तिपूजा पर आर्य्यसमाज का सब से बड़ा आक्षेप यह हुवा करता है कि परमात्मा निराकार है अतः उसकी मूर्ति नहीं बन सकती, स० ध० श्री परमात्मा के निराकार स्वरूप को मानता है परन्तु 'उस की मूर्ति नहीं बन सकती' यह दावा गलत है क्यों कि संसार में अनेक निराकार एवं सूक्ष्मतर पदार्थों को समझने के लिये उन के आकार कल्पना किये जाते हैं जैसे ज्ञान कोई मूर्तपदार्थ नहीं है उसका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं हो सकता तथापि बुद्धिमानों ने क, च, ट, त, प, आदि रूपवान् वर्ण नियत करके निराकार ज्ञान को लिपिबद्ध कर

डाला है ये सब ग्रन्थ उस निराकार ज्ञान की मूर्तियें हैं, यदि निराकार की प्रतिमा नहीं बनती तो शायद परमात्मा का निराकार ज्ञान- वेद के रूप में मनुष्यों तक न पहुँच पाता ! वेद क्या हैं ? वास्तव में ईश्वरीय निराकार ज्ञान की साकार प्रतिमाएं ही हैं जिनकी स्वाध्याय रूप उपासना से हम उसे प्राप्त करते हैं। यह जेबघड़ी अव्यक्त काल का ज्ञान प्राप्त करने की मूर्ति है इससे इन्द्रियातीत टाइम का बोध होता है। ध्वन्यात्मक अव्यक्त शब्दों की पहिचान के लिये बुद्धिमान् मनुष्यों ने अनेक सङ्केत नियत कर रक्खे हैं जैसे घन्टे की ध्वनि का अनुकरण 'टनटन' और नगारे के शब्द का संकेत 'धमधम' प्रसिद्ध हैं। वस्तुतः इनमें से ठीक ऐसा ही वर्णात्मक घोष न निकलने पर भी उपर्युक्त सङ्केत श्रोता को वक्ता का हार्द समझाने में अतीव सहायक होते हैं यदि अबोध बालक को दूज के चन्द्रमा की सूक्ष्म कला न दीख पड़े तो उसकी चञ्चल दृष्टि को समान सूत्र में केन्द्रित करने के लिये अक्लमन्द लोग किसी ऊंचे वृक्ष की चोटी का अथवा मकानों के छज्जो का सङ्केत कर देते हैं यद्यपि चान्द आकाश में है और ये वृक्षादि पदार्थ भूमि पर खड़े हैं तथापि इनके समाश्रय से वह दूरस्थ चन्द्रमा दीखने लग जाता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य की चञ्चलवृत्ति मूर्ति के निरन्तर ध्यान से सुस्थिर होजाती है और अन्त में वह हृदिस्थ परमात्मा दीख पड़ता है।

जिस प्रकार पाठशालाओं में भूगोल शिक्षा के लिये

नक्शे की सहायता सापेक्ष्य है और उस स्वल्पकाय नक्शे की रेखाएं ब्रह्माण्डस्थ नद नदी पर्वत आदि की वास्तविक स्थिति का पता देती हैं ठीक इसी प्रकार प्रतिमा भी विराट् रूप भगवान् की संस्था के समझने में हमारी सहायक होती है। तदनुसार मूर्ति दो प्रकार की होती हैं एक राम कृष्णादि अवतारों की, जो कि उनके अवतारी शरीरों के अनुसार धनुर्धारी किंवा 'वंशीविभूषित' रूप में पूजी जाती हैं इन्हें हम सगुण विग्रह कह सकते हैं। दूसरी प्रतिमाएं शालिग्राम शिवलिङ्ग आदि हैं जिनमें हाथ पांव आदि की कल्पना न करके केवल अण्डाकार ब्रह्माण्ड की भांति तादृश रूप में पूजा जाता है ये निर्गुण विग्रह कहे जाते हैं। रामकृष्णादि की मूर्तियों के दर्शन और मनन से उन आदर्श अवतारों के जीवन काल की अनुकरणीय लीलाएं हमारे हृदयों पर अमिट रूप से अङ्कित होजाती हैं जिससे हमें अपने जीवन को उच्च बनाने में सफलता मिलती है और अन्त में इसी संयत जीवन के कारण मोक्षपदवी भी सुलभ होजाती है। निर्गुण विग्रहों के निरन्तर अनुध्यान से उस अण्डाकृति पीठ में "भूपादौ यस्य नाभिर्वियदसुरनिलश्चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे" की भावना को दृढ करते २ यह समस्त ब्रह्माण्ड परमात्मा से ओतप्रोत जान पड़ता है। अन्त में "हरिरेव जगद् जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः" का बोध होजाने पर मोक्षपदवी प्राप्त होजाती है इस प्रकार दोनों प्रकार की प्रतिमाओं की उपासना का चरम लक्ष्य 'निर्वाणप्राप्ति' है। यही मूर्तिपूजा का रहस्य है।

महाशयजी ! गुस्ताखी मुवाफ हो ! आप हम पर तो जड़ोपासना का निराधार आक्षेप करते हैं परन्तु आपके ग्रन्थों में तो छुरा, पटेला, कुशा, छाता, जूता आदि अनेक जड़ वस्तुवों की पूजा प्रार्थना करनी स्पष्ट लिखी हैं, शुद्ध प्रतिभा में ध्यान लगाने में तो आपको पाप दीख पड़ता है परन्तु मल-मूत्र से क्लिन्न रीढ़ की अपवित्र हड्डी में स्वामी जी मन टिकाना लिखते हैं इसका भी कुछ जवाब है।

प्रश्नोत्तर का निष्कर्ष—

प्रथम प्रश्न के (क, ख, ग) भाग के उत्तरों की आलोचना में महाशय बुद्धदेव जी ने कहा कि यदि काम क्रोध पूर्वक भी राम नाम कहने से ही झट पट मुक्ति होजाती है तो फिर सनातनधर्म्मी आर्य्यसमाज पर खण्डन का क्यों दोष मंढा करते हैं ? शायद खण्डनात्मिका भक्ति से हम भी मुक्त होजाएं ! (हास्य) पं०माध्वाचार्य्य जी ने कहा कि निःसन्देह खंडन करते २ भी आप जिस दिन स्वर्गीय पं०भीमसेनजी पं०-अखिलानन्द जी स्वामी सत्यानन्द जी की तरह आर्य्य समाज का मिथ्यात्व समझ जाएंगे उस दिन आपका भी कल्याण हो जायगा ! (अट्टहास) स्वामी दयानन्द जी ने सिर्फ एक दिन बचपन में शिव पूजन किया था जिसके पुण्य से लाखों बाबुओं के गुरु बन गए कदाचित् निरन्तर शिवपूजन करते

रहते तो फिर मुक्ति में क्या सन्देह था ! (महाट्टहास)

(घ) भाग की आलोचना में बुद्धदेव जी ने कहा कि गोपियों के साथ क्रीड़ा करने के समय कृष्णजी की दशवर्ष की आयु थी या कम ज्यादह यह तो सनातनधर्म्मी जानें परन्तु उन्होंने चुम्बन किया, आलिङ्गन किया, ऐसा वहां साफ लिखा है। उत्तर में पं०माधवाचार्य्य जी ने कहा कि महाशय जी ! गोल मोल बात क्यों करते हो साफ २ कहो कि व्रजलीला के समय भगवान् श्रीकृष्ण की ग्यारह वर्ष से कम आयु थी या-ज्यादह ? (चुप) खामोश रहने से काम न चलेगा बोलिये ! (फिर चुप) अच्छा ! जनता समझ सकती है कि महाशयजी मेरे इस उत्तर का प्रतिवाद नहीं कर सकते कि व्रजलीलाओं के समय भगवान् की केवल दश ग्यारह वर्ष की आयु थी। अस्तु ! जब यह बात स्वीकार करली गई तो फिर ऐसी निर्विकार अवस्था के बालकों का विशुद्ध प्रेम पूर्वक गले लगाना, चिपटना और चुम्बन करना किस न्याय के अनुसार सदोष कहा जा सकता है यह बात हमारी समझ में नहीं आती ? अब भी बड़े घराने के चहीते विनोदी बालक ऐसी विशुद्ध लीलाएं प्रायः किया करते हैं परन्तु उनकी इस बाल क्रीड़ा में किसी को भी दुराचार की गन्ध नहीं आती ! मैं महाशय जी को फिर ललकारता हूं वे बताएं कि क्या किसी भी पुराण में भगवान् कृष्ण का गोपियों के साथ मैथुन करना लिखा है ? (सन्नाटा)

(२) दूसरे प्रश्न के उत्तर की आलोचना करते हुवे म०-बुद्धदेव जी ने कहा कि पण्डित जी ने जो मूर्तिपूजा सिद्ध करने के लिये 'नोट' का दृष्टान्त दिया है वह विचित्र है। यदि कोई नक़ली नोट बनाने का साहस करे तो उसे बड़ा भारी दण्ड मिलता है, सो सनातनधर्म्मी भी नक़ली ख़ुदा बना लेते हैं (हास्य) उत्तर में पं०माधवाचार्य्य जीने कहा कि वास्तव में नक़ली नोट बनाना अवश्य जुर्म है। परन्तु यदि ख़ुद गवर्नमेन्ट 'करेंसी आफिस' खोलकर नोट बनाने का महकमा नियत करदे तो इस महकमे के अधिकारियों को लम्बी २ तनख्वाएं दी जाती हैं बड़े २ इनामात मिलते हैं ठीक इसी प्रकार यदि हम वेदाज्ञा के विरुद्ध ईश्वरप्रतिमाएं घड़ते तो अवश्य ही दण्डार्ह होते, परन्तु हमें तो प्रभु ने अपनी प्रतिमाएं बना कर उपासना करने का वेदाज्ञाद्वारा अधिकार दिया है तदनुसार आचरण करने पर भगवान् हमें अवश्य ही भक्ति–किंवा मुक्ति प्रदान करेंगे। (हास्य) हां! जैसे गवर्नमेन्ट की आज्ञा से तैय्यार किये गए नोटों को 'कागज' बता कर ठुकराने वाला व्यक्ति राजद्रोह की दफा में सज़ा पाता है ठीक इसी प्रकार हमारी वेदोक्त प्रतिमाओं का खण्डन करने वाले आप लोगों को भी परमात्मा के निकट लज्जित होना पड़ेगा। (अट्टहास)

(३) तीसरे प्रश्नके उत्तर की आलोचना में पं०बुद्धदेव-जी ने कुछ भी क़ाबले ज़िक्र नई बात नहीं कही अपितु पुरानी लकीर को ही पीटते रहे। हां बीच २ में बेहूदा ऐक्टिङ्ग मोशन

अवश्य करते रहे जिसके लिये न सिर्फ जनता ने ही बुरा मनाया अपितु पं०माधवाचार्य्य जी को भी विवश होकर यह कहना पड़ा कि आप गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक हैं कहा जाता है कि वहां कणाद गोत्तम तैय्यार किये जाते हैं सो वेद शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा और प्रवल युक्तियों द्वारा विद्वत्ता पूर्वक अपने पक्ष का समर्थ करने का प्रयत्न कीजिये यह ऐक्टिङ्ग मोशन तो शाहपुरी नक्काल भी कर सकते हैं! [इस पर महाशयजी ने अपनी भूल महसूस की और भविष्य में अपने आप को कावू में रक्खा]

(४) चौथे प्रश्न के उत्तर की आलोचना में, म०बुद्धदेव-जी ने कहा कि पुराणों में साम्प्रदायिक कलह भरी पड़ी है। प्रत्यक्ष में भी– खासकर दक्षिण भारत में शैव वैष्णवों की खूब लगती है। उत्तर में पं०माधवाचार्य्य जी ने कहा कि व्यक्तिगत निर्वलताओं का सिद्धान्त पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता आप जनता का डार्क पहलू लेते हैं ज़रा रोशन पहलू पर भी तो ध्यान दीजिये। परम वैष्णव गो०तुलसीदास जी ने 'शिवद्रोही मम दास कहावे' आदि भावों द्वारा शिव भगवान् की लोकोत्तर प्रतिष्ठा की है, जगद्गुरु स्वामी आद्य शङ्कराचार्य्यजी के वनाए हुवे प्रायः सभी देवताओं के स्तोत्र विद्यमान हैं आपने 'विष्णु सहस्र नाम' का भाष्य रच कर विष्णु भगवान् के चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। मैं ही आपके सामने कैसे खड़ा हूं! मैं स्वयं भगवान् भाष्यकार श्री रामानुजाचार्य्य जी के

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार श्रीवैष्णव हूँ तथापि मैंने भगवान् शिव की महिमा गाकर अपनी जिह्वा पवित्र करने के लिये 'भगवान् शिव का वैदिक स्वरूप' 'ओंकार और शिवलिङ्ग' आदि दो पुस्तक लिखे हैं (हर्षध्वनि) इसलिये लड़ना या प्रेम से रहना यह तो व्यक्तियों की अपनी २ योग्यता पर निर्भर है। यदि इतने पर भी आपकी तसल्ली न हो तो हमें विवश होकर कहना पड़ेगा कि यह लड़ना झगड़ना तो हमारी अपनी घर की बात है हम आपस में निबटते रहेंगे, आप पंचायत करने वाले कौन होते हैं ? यदि मूर्तिपूजा के खंडन में कोई वेदमंत्र मौजूद हो तो पेश कीजिये ! और उत्तर लीजिये !

इसके बाद म० बुद्धदेवजी ने सनातनधर्म्म की ओर पेश किये गए प्रमाणों और युक्तियों की आलोचना में नीचे लिखे भाव प्रकट किये—

(A) 'त्र्यम्बकं यजामहे' आदि मन्त्र की आलोचना में महाशय जी ने कहा कि इस मन्त्र का मूर्तिपूजा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं, परमात्मा को तो वेदों में 'अकायम्' और 'अव्रणम्' कहा है तो जैसे 'सहस्रशीर्षा' आदि मन्त्रों में उसी निराकार परमात्मा की अनन्त शक्तियों को आलंकारिक रूप से 'शिर पांव नेत्र' के नाम से प्रकट किया है इसी प्रकार 'त्र्यम्बकं' मन्त्र में भी चन्द्र अग्नि सूर्य्यादि ज्योतियों को ही उस के नेत्रों की समान प्रकट किया है- इस के उत्तर में

पं० माधवाचार्य्य जी ने समझाया कि महाशय जी ! ' जादू तो वह जो शिर चढ़ बोले जब आप स्वयं ही सूर्य्य चन्द्र के समान सहस्रों मील लम्बे चौड़े ज्योति- पिण्डों को भगवान् के नेत्र स्वीकारते हो फिर उसे निराकार किस न्याय से कहते हो ? (हास्य) भला ! जिस के इतने २ बड़े नेत्र हों तथा एक नहीं- सहस्रों शिर पांव रखता हो फिर भी उस की मूर्तिं= प्रतिकृति= फोटो नहीं बन सकता यह बात क्यों ? (अट्टहास)

(B) महाशय जी ने ' मुखायते ' के उत्तर में कहा कि इस मन्त्र में तो राजा का वर्णन है, वह हमारा और हमारे पशुवों का रक्षक होता है अतः उसी का नाम ' पशुपति ' है उसी शरीरधारी राजा का हमें यथायोग्य सत्कार करना चाहिये यही इस मन्त्र का अभिप्राय है। इस के जवाब में पं० माधवाचार्य्य जी ने कहा कि अच्छा महाशय जी ! इसी एक मन्त्र पर हमारा और आप का फैसला है यदि आप यह सिद्ध करदें कि उक्त मन्त्र में किसी राजा का वर्णन है तो सनातन धर्म्म हारा और यदि मैं यह पूर्ण रूप से सिद्ध करके दिखादूं कि इस मन्त्र में वस्तुतः किसी मानव राजा का वर्णन नहीं अपितु देवाधिदेव महादेव का वर्णन है तो आप को अपना पराजय स्वीकार करना होगा ! अस्तु मैं अपने पक्ष की पुष्टि में तीन कारण पेश करता हूँ जिन से कि इस मन्त्र में परमात्मा का वर्णन सिद्ध होता है, पहिला- इस सूत्र के तीसरे मन्त्र में 'अमर्त्य' शब्द विद्यमान है जिस का अर्थ ' न मरने

वाला' है यह विशेषण राजा में घटित नहीं हो सकता। दूसरा- इस सूक्त के चौथे मन्त्र में और दशवें मन्त्र में रुद्र को भूमि अन्तरिक्ष और द्यौः आदि समस्त चराचर का बनाने वाला बताया है यह बात भी मनुष्य में घटित नहीं होती। तीसरा कारण और प्रबल कारण यह है कि 'मुखायते' आदि मन्त्र में 'चक्षूंषि' शब्द विद्यमान है जिस का अर्थ 'तीन नेत्र' है सो किसी मानव राजा में यह विशेषण चरितार्थ नहीं होता। सायणादि का तो कहना ही क्या है आर्य्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् डी० ए० वी० कौलिज के संस्कृत प्रोफेसर पं० राजाराम शास्त्री ने भी अपने अथर्व भाष्य में यह समस्त सूक्त ईश्वर परक लगाया है, लीजिये यह ग्रन्थ भेजता हूँ [सभाध्यक्ष के पास राजाराम कृत अथर्ववेद भाष्य पहुंचा दिया गया]

म० बुद्धदेव जी ने कहा कि आप ने इस मन्त्र को ईश्वर परक सिद्ध करने के लिये जो कारण पेश किये हैं वे सब व्यर्थ हैं क्योंकि मनुष्य भी 'अमर्त्य' हो सकता है, पुरातन कवियों ने कहा है कि- 'नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं-भयम्' अर्थात् - यशः रूप शरीर ऐसा है कि जो न कभी बूढ़ा हो सकता है और नांही मर सकता है। सो जो राजा यशस्वी होते हैं वे सदैव 'अमर' रहते हैं।

'पृथ्वी' नाम ब्रह्मचर्य्य का है 'अन्तरिक्ष' नाम गृहस्थाश्रम का है और 'द्यौः' नाम वानप्रस्थ का है सो जो राजा उक्त आश्रमों की मर्य्यादा का पालन करने वाला है वही

'भूमि' अन्तरिक्ष और द्यौः का वनाने वाला कहा गया है (उपहास)

तीन नेत्रों का तात्पर्य्य अनेक नेत्र है सो राजा के भी वहुत से नेत्र होते हैं जैसे– 'चारैः पश्यन्ति राजानः' अर्थात्– गुप्त चर राजा के नेत्र होते हैं इस शास्त्रार्थ में भी वहुत से सी० आई० डी० के आदमो उपस्थित हैं। यही राजा की आंखें हैं। (उपहास)

पण्डित जी ने जो राजाराम का भाष्य पेश किया है मैं उसे नहीं मानंता (हंसी) पं० माधवाचार्य्य जी ने पूछा कि क्या आप किसी भी संस्कृत कोश में 'अमर्त्य' शब्द मनुष्य का पर्य्याय दिखा सकते हैं ? (चुप) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौः शब्दों के अर्थ ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ और वानप्रस्थ कहां लिखे हैं ? (चुप) खैर सायणादि तो आप की दृष्टि में पोप थे इस लिये आप उनका भाष्य मानने में तो वहाना वना लेते हो परन्तु पं० राजाराम शास्त्री तो आर्य्यसमाज के धुरन्धर विद्वान् हैं उनका भाष्य आप क्यों नहीं मानते ? कारण बतलाइये ? (चुप) वोलो ! क्यों नहीं मानते ? [जनता में शोरोगुल– सभाध्यक्ष शान्ति २ "मैं प्रार्थना करूंगा कि दोनों पक्ष के वक्ता महानुभाव अपना २ वक्तव्य कहते चले जाएंगे वीच में एक दूसरे को टोकने का प्रयत्न न करेंगे क्यों कि जनता सव कुछ समझती जारही है, टोक टाक से अशान्ति पैदा हो जाती है" – यह कह कर पुस्तक वापिस भेज दिया] पं० माधवा-

चार्य्य जी ने अपनी स्पीच जारी रखते हुवे कहा कि—सोते को जगाया जा सकता है परन्तु जान बूझ कर मचले हुवे को कैसे जगाया जा सकता है, मैं एक वार फिर जनता का ध्यान 'मुखाय ते पशुपते!' मन्त्र की ओर आकृष्ट करता हुवा ज़ोर के साथ चैलेञ्ज करता हूं कि इस मन्त्र में किसी भी मानव राजा का ज़िक्र नहीं है अपितु इस में देवाधिदेव महादेव की सर्वाङ्गपूर्ण मूर्ति का वर्णन है (हर्ष ध्वनि) महावीर प्रतिमा के उत्तर में म० बुद्धदेव जी ने कहा कि यज्ञ में मिट्टी के पांच वरतन वनाए जाते हैं उन का नाम 'महावीर' है इस पर पं० माधवाचार्य्य जी ने पूछा कि यहां तो स्पष्ट शब्दों में महावीर की मूर्ति के पेट मुख आदि अङ्ग वनाने लिखे हैं? बुद्धदेव जी ने कहा कि आम व्यवहार में वोला जाता है कि इस घड़े का पेट वड़ा है। इस सुराही का मुँह छोटा है। सो वर्तनों के हिस्सों को भी पेट मुँह वगैरा होते हैं सो ही यहां लिखे हैं। अन्त में पं० माधवाचार्य्य जी ने ललकारा कि यहां तो 'नाक' वनानी भी लिखी है क्या वर्तनों की नाक भी हुवा करती है? फिर धूप आदि द्वारा उस महावीर का पूजन करना भी दर्ज है क्या समाजी मट्टी के वर्तनों पर धूप-दीप सामग्री चढ़ाते हैं? (अट्टहास) [इस पर महाशय जी को कुछ न सूझा और रेते की दीवार धम से गिर पड़ी जनता ने समाज का पराभव खूब अनुभव किया]

प्रतिमाओं के हंसने, रोने, आदि का उत्तर देते हुवे

म० बुद्धदेव जी ने कहा कि पण्डित जी ! आज तो शहर शहर और गांव गांव में मूर्तियें हंसती रोती नाचती और कूदती नज़र आती हैं किसी भी 'सिनेमा हाल' में जाकर देख लीजिये (हंसी) मन्दिर की मूर्तियें तो हमने कभी रोती हंसती सुनी नहीं (अट्टहास) इस पर पं० माधवाचार्य्य जी ने समझाया कि वेद प्रमाण को चुटकियों में उड़ाने से काम नहीं चलेगा ! लीजिये ! यह डी० ए० वी० कौलिज के रीसर्च विभाग की तर्फ से छपा हुवा 'वैदिक कोश' ग्रन्थ मेरे पास विद्यमान है इस में 'यदा देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति, रुदन्ति, नृत्यन्ति,— इत्यादि श्रुति विद्यमान हैं, पढ़िये और इसका अर्थ कीजिये ! वे कौनसी प्रतिमाएं हंसती रोती हैं यह बात वेद के रचयिता निराकार बाबा से पूछिये ! और यदि वह भी न बता सकें तो उस पर अदालत में दावा ठोंक दीजिये ! (अट्टहास) महाशयजी ! यदि सभाध्यक्ष महोदय की ओर से बीच में न टोकने का आदेश न होता तो मैं आपको पूछता कि वेद में 'यदा देवतायतनानि कम्पन्ते' आदि मंत्र है या नहीं ? यदि है तो इसका अर्थ प्रतिमाओं का हंसना रोना दीख पड़ता है या कुछ और ?

वास्तव में जब कोई भारी दैवी आपत्ति आने वाली हो उस समय प्रतिमाओं में अक्सर ऐसे लक्षण दीख पड़ते हैं सामविधान ब्राह्मण में इसकी शान्ति लिखी है। अभी पिछले दिनों मुक्तसर (पंजाब) के पास एक प्रतिमा से पसीना

छूटता देखा गया था यह बात पंजाब के अखबारात में छपी थी।

छुरा पटेला आदि की पूजा का जवाब देते हुवे मं०बुद्धदेवजी ने कहा कि हम छुरे की पूजा हरगिज नहीं करते, जैसे कोई वीरपुरुष अपनी तेज तलवार की बड़ाई करता हुवा कहे कि शाबाश मेरी प्यारी तलवार! इसी प्रकार मुण्डन संस्कार के समय नाई अपने उस्तरे की बड़ाई करता है कि शाबाश मेरे उस्तरे! तू कमाल करता है। इसी प्रकार कुशा आदि के रखने की भी विधि है। समावर्तन के समय मंत्र बोल कर छाता जूता आदि धारण किये जाते हैं परन्तु उनकी पूजा तो नहीं की जाती- इस पर पं०माधवाचार्य्यजी ने कहा कि महाशयजी जबानी लीपा पोती करने से काम नहीं चलेगा मेरे पास संस्कारविधि की भाषाटीका मौजूद है जो गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक पं०रामगोपाल विद्यालङ्कार ने बनाई है इसमें साफ लिखा है कि बालक का पिता कहे कि- 'विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि' हे उस्तरे! तू विष्णु (परमात्मा) की दाढ़ है। तुझे नमस्कार हो। आप व्यर्थ ही नाई की उक्ति ठहराते हैं! क्या जड़ छुरे के सामने मस्तक झुकाना जड़ोपासना नहीं है? आप कहते हैं कि 'कुशा को रखने की तो विधि है'- हम भी तो यही कहते हैं कि वेदों में कुशा आदि जड़ पदार्थों द्वारा उनकी अधिष्ठातृ शक्तियों की उपासना करने की विधि विद्यमान है। जब आप कुशा से कहते हैं कि- 'औषधे त्रायस्वैनम्' अर्थात्

हे- औषधि ! इसकी रक्षा कर। यदि वह घास आपकी रक्षा करती है तो फिर भगवान् की सर्वाङ्गपूर्ण प्रतिमा हमारी प्रार्थना पर हमारी रक्षा क्यों न करेगी ! आप छाते जूते की पूजा स्वीकार करते हुवे कुछ लजाते हैं। तभी तो एक सत्य बात को भी यह कह कर टालना चाहते हैं कि हम पूजते तो नहीं सिर्फ मन्त्र बोल कर उन्हें पहिन लेते हैं। क्यों जनाब ! यदि मंत्र न बोला जाए तो क्या वह जूता पांव में पड़ने से इन्कार करता है ? (अट्टहास्य) महाशयजी लीजिये यह संस्कारप्रकाश पढ़िये इसमें जूते को मुखातिब करते हुवे कहा गया है कि- 'हे जूता ! मेरे पांवों की रक्षा कर'। कहिये ! आप से फुलसलीपर साहिब भी बतयाते हैं (हंसी) और महाशय चप्पल जी भी आपकी प्रार्थना को कबूल फरमाते हैं (हंसी तथा अट्टहास) श्रीमती गुरगाबी महोदया भी बाल बाल बचाने की गारन्टी देती हैं परन्तु यदि सनातनधर्म्मी रामकृष्णादि आदर्श महापुरुषों की प्रतिमाओं की प्रार्थना करके अपना चरित्र ऊंचा बनाना चाहते हैं तो आप जड़ोपसना का तोफान खड़ा कर देते हैं यह क्या मजरा है ? [जनता में बार बार हर्षध्वनि, समाजियों के चेहरे फक्क होने लगे, महात्मा बुद्धदेव जी रंग बिगड़ता देखकर अपने आपे से बाहर होगए और जोश में आ कर कहने लगे कि—] पण्डितजी व्यर्थ ही हम पर जड़ोपासना का दोष लगाते हैं वास्तव में जड़ोपासक हम हैं या सनातनधर्म्मी- इस बात का अभी दो टूक निर्णय हो

आता है एक ओर जूता पकड़ कर मैं खड़ा होता हूँ और जो जो चीज़ें हमारी पूजनीय बताई जा रही हैं उनको सौ २ जूता मारता हूँ दूसरी तर्फ पण्डितजी भी ऐसा करके दिखाएं बस मामला साफ है! इस पर पं० माधवाचार्य्य जी ने कहा कि मुझे अफसोस है कि महाशय जी ने वेद प्रमाण और तर्कों को त्याग कर व्यर्थ ही जूते पैजार की अशिष्ट बातें आरम्भ करदी हैं हम तो किसी भी मूर्ति की शान में इस प्रकार के शब्द सुनना भी गवारा नहीं करते, चूंकि शास्त्रार्थ चालू है इसी लिये हम इन शब्दों को नजर अन्दाज करते हैं अन्यथा वक्ता को वापिस लेने के लिये वाध्य करते परन्तु महाशय बुद्धदेव जी ऐसी परीक्षा देने के लिये आग्रहपूर्वक उतावले हो रहे हैं दो वर्ष पूर्व लाहोर छावनी के शास्त्रार्थ में भी यह अरमान आपका वाकी रह गया था सो लीजिये हम परीक्षा कर देखते हैं! वज़ातेखुद मैं स्वामी दयानन्द जी की उतनी ही इज़्ज़त करता हूँ जितनी कि एक हिन्दू के हृदय में दूसरे प्रतिष्ठित हिन्दू के लिये होनी चाहिये तथापि उन की यह तसवीर पेश करता हूं क्या महाशय जी इस के साथ वैसा सलूक करके दिखा सकते हैं? आप की दृष्टि से यह रंग से रंगा कागज़ का एक जड़ टुकड़ा है [सन्नाटा] मैं यह भी घोषित कर देना चाहता हूँ आप को प्रति जूता एक रुपया इनाम भी दिया जाएगा यह पांचसौ रुपये की थैली मौजूद है अधिक के लिये बैंक का चैक दे दिया जाएगा [जनता सन्नाटे में] म० बुद्धदेव जी ने घवड़ा कर किन्तु आग्रहपूर्वक कहा कि लाइये मैं तैयार

हूँ! यद्यपि स्वामी जी में मेरी अगाध श्रद्धा है यदि कोई दूसरा ऐसा करे तो मैं उस से लड़ूंगा भी तथापि आप लोगों के हृदयों से यह भ्रम दूर करने के लिये कि आर्य्यसमाज भी जड़ोपासक है मैं यह कठिन परीक्षा देने को भी तैय्यार हूँ।

समाजी कैम्प में हल चल- एक दूसरे से काना फूसी- जनता में विलक्षण 'किं भविष्यति'-] ज्यों ही स्वयं सेवक स्वामी जी का चित्र लेकर समाज के स्टेज की तर्फ चला त्यों ही सनातनी सभाध्यक्ष ने अतीव करुणाजनक शब्दों में कहा कि बात बहुत बढ़ चली है हम मूर्तिपूजक हैं इस लिये मैं पूज्य स्वामी जी के चित्र का अपमान भी कभी पसन्द नहीं करूंगा इस लिये मैं म० बुद्धदेव जी से ऐसा न करने की दरख्वास्त करता हूँ पण्डित माधवाचार्य्य जी भी इस बात चीत को यहीं समाप्त कर देंगे ऐसी मुझे आशा है। इस पर पं० माधवाचार्य्य जी ने सनातनी सभाध्यक्ष जी से कहा कि आपने जो उदार विचार प्रकट किये हैं मैं इन से सहमत हूँ सनातनधर्म्म के दृष्टि कोण से हम किसी भी प्रतिमा का अपमान बरदाश्त नहीं कर सकते फिर चाहे वह हमारे किसी प्रतिपक्षी की ही क्यों न हो सांपों को भी दूध पिलाने वाले सनातनधर्म्म का यही आदर्श है तथापि मैं इस विषय में आर्य्यसमाजी सभाध्यक्ष के विचार भी जानना चाहता हूं कि वे इस कार्य्य को किस दृष्टि से देखते हैं, और प्रतिमा के प्रति उनके क्या भाव हैं?- उत्तर में पं० गोपालराव साहिब ऐडवोकेट अध्यक्ष आर्य्यसमाज ने भी जूता न मारने की बात

का समर्थन किया और इस तरह यह काण्ड यहीं समाप्त हो गया, परन्तु म० बुद्धदेव जी ने अपनी टर्न में– सम्भवतः यह समझ कर कि शास्त्रार्थ में जो पद पद पर आर्य्यसमाज का घोर पराजय हुवा है वह कलङ्क जूता मार देने पर किसी अंश तक धुल जाएगा किसी को कानों कान खबर न होने दी और अपनी ही किसी पुस्तक से स्वामी दयानन्द सरस्वती का चित्र निकाल कर चुपके से मेज पर रक्खा और अपने वक्तव्य के सिलसिले में यह कहते हुवे कि 'लीजिये यह स्वामी जी का चित्र है मैं इस को जूता मारता हूं' धम से लात जमादी। पं० माधवाचार्य्य जी ने भी तत्काल यह कहते हुवे कि यद्यपि म० बुद्धदेव जी ने जूता मारने की शर्त को पूरा नहीं किया किन्तु पांव से ठुकरा कर ही रह गए तथापि मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार यह एक रुपया इनाम देता हूं बुद्धदेव जी ने कहा मैं रुपए पर भी लात मारता हूं, और दश रुपए और देता हूं यह ११ रुपये पण्डित जी संभालें इस पर पं० माधवाचार्य्य जी ने कहा कि ग्यारह का सिलसिला समाज को ही मुबारिक हो (जनता में, अट्टहास) सभाध्यक्ष ने दोनों पक्षों के रुपये वापिस कर दिये।

[जनता आर्य्य-समाज के ही एक उपदेशक द्वारा आर्य्यसमाज प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का अपमान होता देख कर चित्रित सी रह गई। समाजी कैम्प में बेतरह खलबली सी मच गई गंभीर सन्नाटे के बाद जनता में कोलाहल होने लगा सभाध्यक्षों ने परस्पर विचार करने के बाद आगे होने वाले चारों शास्त्रार्थों को मुलतवी कर दिया]

सामयिक समाचारपत्रों की
एक झलक



स्त्रार्थ समाप्त हो चुकने के बाद लग भग छः सात महीने तक निरन्तर 'जूताकाण्ड' की प्रतिध्वनि सामयिक समाचारपत्रों में गूँजती रही। यदि केवल समाजीपत्रों के लेखों का ही संग्रह किया जाए तो भी 'अल्फलैला' के बराबर हज़ार पृष्ठों का बृहद् ग्रन्थ तैय्यार होजाए और पढ़ने वालों को 'लण्डन-रहस्य' उपन्यास के पढ़ने जैसा आनन्द मिले। यद्यपि हम ऐसा करने में असमर्थ हैं तथापि कतिपय ऐसे लेख जिनको कि प्रकाशित न करना विज्ञ पाठकों के साथ घोर अन्याय कहला सकता है– इस प्रसङ्ग में अवश्य उद्धृत करेंगे पाठक 'स्थालीपुलाक' न्याय से मनन करें—

पं॰ नरदेव शास्त्री का फतवा

['हिन्दी मिलाप' (लाहोर) ४ अगस्त सन् १९३५ ई॰ से]

क्या मूर्त्तिपूजा का यही अर्थ है ?
पं॰ बुद्धदेव का घृणास्पद कार्य्य
प्रायश्चित्त की आवश्यकता

(ले॰ श्री पं॰ नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ)

हैदराबाद (दक्षिण) से खबर आई है कि वहां के आर्य्यसमाजियों व सनातनधर्मियों में शास्त्रार्थ हुआ और

पण्डित बुद्धदेव जी स्नातक गु०कु० कांगड़ी व महोपदेशक आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने यह सिद्ध करने के लिये कि आर्य्य समाज मूर्तिपूजक नहीं है श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती की तस्वीर को लातों से ठुकरा दिया। यह कार्य्य भरी सभा में सहस्त्रों की उपस्थिति में हुआ। यह समझ में नहीं आया कि बुद्धदेव जैसे समझदार व्यक्ति ने ऐसा अत्यन्त अनुचित घृणास्पद कार्य्य क्यों किया। मूर्तिपूजा का अर्थ यह थोड़ा ही है कि अपने आराध्य पुरुषों के चित्र घर में न टांगे जांय या न लगाये जायं। मूर्तिपूजा का अर्थ यह है कि किसी जड़ वस्तु को ईश्वर मानकर पूजा जाय। आर्य्यसमाज तो किसी जड़ वस्तु को ईश्वर नहीं मानता और न पूजता है। स्वामी दयानन्द के जड़ चित्र को ईश्वर मान कर न वह पूजता है न कुछ, फिर समझ में नहीं आता कि प्रतिपक्षी सनातनधर्मी पण्डित के यह कहने पर कि आर्य्य समाजी भी मूर्तिपूजा करते हैं स्वामी जी की तस्वीर रखते हैं, पूजते हैं, इत्यादि पण्डित बुद्धदेव ने पहले निषेध किया कि हम लोग मूर्तिपूजा न मानते हैं न करते हैं फिर सनातनी पण्डित के यह कहने पर कि तुम स्वा० जी की तस्वीर पूजा नहीं करते तो स्वामी जी के चित्र पर हमारे सामने जूते लगाओ– बुद्धदेव स्वा० के चित्र पर जूते मारने को तैयार हुए किन्तु सभाध्यक्ष अथवा मध्यस्थ ने जो एक सनातनी पुरुष थे ऐसा करने से मना किया फिर भी बुद्धदेव ने स्वामी जी की तस्वीर के लात जमाही दी।

सभाध्यक्ष ने कहा कि मैं ऐसा अनुचित कार्य्य अपनी अध्यक्षता में अथवा अपने सामने नहीं होने दूंगा। स्वा० जी संन्यासी थे, ब्राह्मण थे, इस नाते वे हमारे पूज्य हैं। बुद्धदेव-जी ने फिर भी अध्यक्ष से अनुमति मांगी और उनके रोकते २ यह उच्छृङ्खल कार्य्य कर ही डाला। हमें आश्चर्य है उस समय उपास्थत सैंकड़ों आर्यों ने भी इस घृणास्पद कार्य्य को कैसे करने दिया अथवा अचानक ही यह सब होगया और लोग रोकने भी नहीं पाए।

जब बुद्धदेव जी ने स्वा० जी की तस्वीर पर लात जमायी तब सनातनी पंडितों ने कहा कि तसवीर पर जितने जूते जमाओगे उतने ही रुपये हम देंगे। बुद्धदेव जी ने कहा मैं रुपये पर भी लात मारता हूं।

आर्य्य सामाजिक पुरुष मूर्ति पूजा नहीं करते यह सिद्ध करने के लिये स्वा० जी की तसवीर पर लात जमाने जैसे घृणा-स्पद कार्य्य करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं थी। केवल यह उत्तर पर्याप्त था कि हम स्वामी जी की तस्वीर को ईश्वर नहीं मानते और न पूजते ही हैं। किसी जड़ वस्तु को ईश्वर मान कर पूजना, माला चढ़ाना, आरती उतारना मूर्ति-पूजा है। आराध्य देवों की, पुण्य पुरुषों के चित्र घर में रखना मूर्ति नहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्री- अब मैं इनके नाम के साथ श्री लगाना भी अनुचित समझता हूँ— बुद्धदेव जी उस

शक्ति से भरपूर होने की गवाही दे रहा है। चौड़ा मस्तक सरासर प्रज्ञा और प्रतिभा की पट्टिका है। तेरी (तसवीरकी) चमकती हुई आंखों में ईश्वरीय प्रेमप्याले के नशे की झलक है। तेरे गाल फूल से हैं जिनसे ब्रह्मचर्य की बहार प्रकट होती है। इन फूल से गालों को कदापि पतझड़ की हवा का झोंका नहीं छू सकता है। सुगौर वक्षस्थल इतना विस्तृत है कि दोनों लोकों का विस्तार भी इसके सामने सङ्कुचित होगया है। हे तसवीर, तेरी भुजाओं का बल देख कर दुनियाभर के पहलवान हैरान हैं (म० बुद्धदेव में एक तमाचा रसीद न किया– सब लात मारना भूल जाते।) कौम का सुधार हो ऐसी उमंग तेरी छाती में है। तेरे शरीर पर जो आभा है वह आत्मा की आभा की ही झलक है। (यानी चित्र में आत्मा भी है)। तेरा गला वेदमन्त्रों की ध्वनि करता हुआ ऐसा पवित्र होरहा है जैसा कि मुसलमानों का परम पवित्र "ज़मज़म" कुएढ मक्का-मदीना में है। हे चित्र, तेरे चमत्कार पूर्ण ओष्ठों से चारों ओर अमृत टपक रहा है।"

"शरीर की हड्डियां फौलाद से भी कठोर हैं। शरीर की शक्ति के भीतर मन की शक्ति भी छिपी हुई है। बेशक तेरी जंघाएं, तेरे शरीर रूपी महल के आधार-स्तम्भ हैं। और यह तेरी चौड़ी पिण्डलियां योग के आसन को शोभा देने वाली हैं। तेरे वस्त्र विहीन शरीर पर अशुभचिन्तक (शत्रु) क्या चोट कर सकते हैं? ब्रह्मचर्य का तेरा लंगोट लाखों कवचों से भी अधिक सुदृढ़ है।"

"जी चाहता है (हे तसवीर) कि तेरे चरणों में शिर झुका दें, और यदि सम्मान विरुद्ध न समझा जाय तो (जी चाहता है कि) तुझे छाती से चिपटा लें। जी चाहता है कि तुझे आंखों पर रख कर अश्रु-मुक्ता-माल पहना दें। हे चित्र, तू फूल से अधिक सुन्दर सुहावना है। मोती में भी इतनी दमक नहीं है जितनी तुझ में है। यदि तू किसी चित्रकार की बनायी हुई खाली तसवीर ही होती तो इतने जलवे न होते। तुझ में तो मेरा प्यारा अपने प्यार के प्रकाश के साथ प्रकाशित हो रहा है।"

एक सवाल ?

इन पंक्तियों को पढ़-सुन चुकने के पश्चात्, आर्यसमाज के स्वर्गवासी विद्वान् पण्डित मुरारिलाल जी शर्मा की बारहखड़ी (जो मुसलमानों के विरुद्ध लिखी गयी थी) की एक कड़ी नाममात्र के फेर-फार के साथ, मुंह से निकल जाती है—

ओख्खो, भला यह फिर भी नहीं बुतपरस्त हैं।
औरों पै तान कसने को फिर कैसे मस्त हैं ?

कौन क्या कहता है ?

थोड़ा विषयान्तर होगया। इस लेख में हम उस आन्दोलन की झलक दिखाना चाहते हैं जो आर्यसमाज में महाशय बुद्धदेवजी की लातबाज़ी से उठ खड़ा हुआ है इसलिये हम फिर सिलसिले को जोड़ना चाहते हैं। अब देखना यह है कि कौन क्या कहता है ?

महाशय जी को चैलेंज ।

४ अगस्त के 'प्रकाश' में महाशय कृष्ण ने जो पञ्जाब में आर्यसमाजियों के शक्ति और प्रभावशाली नेता हैं, अपने हस्ताक्षर सहित अग्रलेख लिखा है । इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

"यदि पण्डित बुद्धदेव सिद्धान्त की रक्षा इसी में समझते हैं कि वह ऋषि दयानंद के चित्र को जूते दिखाया करें, तो वह शौक़ से दिखाएं— और हर रोज़ दिखाएं; किन्तु केवल अपने घर में । पबलिक में ऐसा करने की इजाज़त न मिलेगी । हैदराबाद (दक्षिण) में तो वह यह कार्य करके साबत चले आये, इसको ग़नीमत समझो । पंजाब में उन्हें कोई ऐसा न करने देगा । और यदि उन्हें जोम हो तो अनुभव कर देखें।"........

बीसवीं सदी का महमूद ।

इसी लेख में आगे चल कर महाशय कृष्णजी लिखते हैं— "मुझे खेद है कि उनमें यह महमूद ग़ज़नवी की सी भावना है । संसार के इतिहास में एक उदाहरण महमूद ग़ज़नवी का मिलता है जिसने अपने लिये मूर्तिभंजक उपाधि पसंद की थी और जिसने हिन्दुओं की देव-प्रतिमाओं को तोड़कर उनके हृदय दुखाने में ही दोनों लोकों के लिये पुण्य माना था । वह महमूद तो ग्यारहवीं सदी में हुआ था, अब बीसवीं सदी में एक नये महमूद का प्रादुर्भाव हुआ है । किन्तु पुराने और नये महमूद में एक अन्तर भी है । पुराने महमूद ने दूसरों की

प्रतिमाओं को नष्ट-भ्रष्ट किया था, यह नया महमूद अपने पूर्वज पर ही हाथ साफ कर गया है।

मार खा गये।

महाशय कृष्ण के विरोधी दल के नेता गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य रामदेवजी हैं जो आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान भी हैं। महाशय बुद्धदेव इनके ही अखाड़े के पट्ठे हैं। यद्यपि इस प्रसङ्ग से आप भी फन्दे में आगये हैं, पर किसी भी तरह योंही उड़ान-झल्लों के साथ "रामाय स्वस्ति और रावणाय स्वस्ति" करके जान बचाना चाहते हैं। बात यह है कि यदि महाशय बुद्धदेव समाज में गिर गये तो फिर इतना अच्छा रंगीला पट्ठा कहां मिलेगा। इसीलिये आपने अपना एक लम्बा वक्तव्य निकाल कर पैंतरे दिखाये हैं। शताब्दियों की ऐतिहासिक तथा काल्पनिक भूमिका के बाद मुख्य घटना के सम्बन्ध में आप फर्माते हैं:—

"पं० बुद्धदेव जी ने शास्त्रार्थ के जोश और ऋषि दयानन्द जी के सिद्धान्त की रक्षा के आवेश में अपने दिल पर पत्थर रख कर एक ऐसी किताब निकाली, जिसमें ऋषि का चित्र था, और फिर उस पर पैर रख दिया। और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि आर्यसमाज पर मूर्तिपूजा का ग़लत इलज़ाम भी नहीं लग सकता। उस समय तर्क उनके शिर पर सवार था। शास्त्रार्थ हो गया, पीछे से शास्त्रार्थ की खुशी में मस्त न थे, बल्कि अपने हार्दिक भावों को चोट पहुँचने से सुस्त और

उदास थे। जब मुझे पता लगा तो मैंने कहा कि वह पण्डित माधवाचार्य की मार खा गये, जिन्होंने इनके सिद्धान्त-रक्षा सम्बन्धी भाव का अनुचित लाभ उठाया।

सिद्धान्त प्रेम का विचित्र रूप।

एक और लेख में रामदेवजी लिखते हैं:—

"पण्डित बुद्धदेव जी कितने त्यागी और ऋषि भक्त हैं यह तो सबको विदित ही है। सिद्धान्त प्रेमी भी वह बड़े हैं। पर उनका सिद्धान्त प्रेम कभी कभी विचित्र रूप धारण कर लेता है!"

यह विचित्र रूप क्या है यह आपने नहीं बताया है—किन्तु बिना बताये हुए भी वह सबको मालूम है।

धिक्कार और फटकार।

आर्यसमाजों और आर्यसमाजियों ने महाशय जी पर धिक्कार और फटकार की बौछार कर रखी है। म० रामदेवजी की पार्टी वाले थोड़ा मुलाहिज़ा निभाते हुए यह कार्य कर रहे हैं जिसमें उनकी स्थिति विचित्र होगई है। किन्तु दूसरे दल वाले तो दनादन वार पर वार किये जाते हैं।

कभी माफ नहीं कर सकता।

मुल्तान की आर्यसमाज के पूर्वमन्त्री श्रीरामचन्द्रजी खन्ना, वकील, लिखते हैं:—

..."पढ़ कर मेरा तो एक-एक रोंगटा कांप उठा; दफ्तर में काम कर रहा था, कलम हाथ से गिर पड़ा और पांच मिनट

तक मुझ से कोई काम न हो सका। ......ऐसा दुष्कर्म किसी ग़ैर आदमी ने किया होता तो क्या आर्यसमाज तिलमिला न उठता। क्या ऐसे व्यक्ति का विरुद्ध (अ) और २९८ धाराओं के अनुसार चालान करने के लिये सरकार पर ज़ोर न डालता। किन्तु अफ़सोस तो यह है कि ऐसा गहरा ज़ख्म लगाने वाला और कोई नहीं, बल्कि हमारा अपना एक उच्च-कोटि का विद्वान् है। पण्डितजी को याद रखना चाहिये कि आर्यसमाज उनको इस कुकर्म के लिये कभी क्षमा नहीं कर सकता। ......बेहतर यही है कि वह खुद बखुद समाज से अलग हो जायँ।"

समाज मुर्दा न होता तो?

'पारस' अपनी सम्मति देता है:—

"अगर आर्यसमाज मुर्दा न होगया होता तो आज पं० बुद्धदेव को अव्वल तो इस किस्म की बेहूदा और लग्व हरकत करने की जुरअत ही न होती, लेकिन अगर वह किसी वजह से अपनी बदज़ोकी (कुप्रवृत्ति) और पागलपन का सबूत ही मुहैया करने में कामयाब हो भी जाते तो उन्हें पता लग जाता कि किसी तबके के रहनुमा (पथदर्शक) की तौहीन करने का नतीजा क्या होता है। मालूम होता है कि आर्यसमाजियों की रगों में प्राचीन आर्यों के खून का एक क़तरा भी बाकी नहीं रहा है।"

बुद्धदेव शिकंजे में।

मतलब यह है कि महाशय बुद्धदेव आज शिकंजे में आगये हैं। उनके पक्ष के आदमी यह कह कर ही पीछा छुड़ाना चाहते हैं कि बुद्धदेव पं०माधवाचार्य की चालाकी के शिकार होगये, जोश में अंधे बन गये। गैर-ज़रूरी काम कर बैठे, किन्तु दूसरे लोग इनको आर्यसमाज से निकाल देना चाहते हैं। पं० नरदेवजी शास्त्री उनके नाम के साथ पण्डित तो पृथक् साधारण "श्रीयुत" लगाना भी पाप समझते हैं। सारांश कि पं०बुद्धदेव पर सर्वत्र कोप प्रकट किया जारहा है।

ऋषि के द्वार का कुत्ता।

इस प्रकार गला फंसा देख कर पं० बुद्धदेव भी विचलित हो उठे हैं। हाल में ही लाहौर में आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में आपने अपनी सफाई देते हुए कहा है—

"मैं तो ऋषि के द्वार का कुत्ता हूं।"

पर इसके साथ ही आप यह कहने से बाज़ नहीं आये कि सिद्धान्त तो वही है।

समाज की चिन्ता।

आर्यसमाज की सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि पं० बुद्धदेव के इस कार्य से सदा के लिये समाज ग़लत पोजीशन में पड़ गया है। अब जहां कहीं शास्त्रार्थ होगा वहीं यह सवाल उठेगा कि मूर्तिपूजा को नहीं मानते हो तो स्वामी दयानन्द के चित्र पर लात तो जमादो— जैसा कि बुद्धदेव कर चुके हैं। लात जमायेंगे तो भद्दा होगी, न जमायेंगे तो ताली पिट जायगी।

कर्मों का फल

'हिन्दी मिलाप' के ११ अगस्त की संख्या में स्वामी दयानन्द जी के शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी लिखते हैं।

"श्रीस्वामी दयानन्दजी महाराज ने अपने श्रद्धालु भक्तों से अनेक बार राम और कृष्ण आदि की मूर्तियों को नदियों में फिकवाया और कभी.........भी लगवाये। अब तो सबको यह मानना पड़ेगा कि महाशय बुद्धदेव ने जो सलूक स्वामी दयानन्द की तसवीर के साथ किया वह उनके ही कर्मों का फल था।"

गुरु–परम्परा

महाशय कृष्णचन्द्र ने प्रकाश में एक लेख लिखा है जिसके हवाले से सनातनी 'आनन्द' कहता है:—

"स्वामी विरजानन्दजी अपने पास कौमुदी के रचयिता की एक तसवीर रखा करते थे। हर नये विद्यार्थी के लिये (जो उनके पास विद्या ग्रहण करने के लिये जाता) यह शर्त थी कि वह उस तसवीर के ५ जूते लगादे। इन्हीं के चेले स्वामी दयानन्द थे। जैसा कि कहा जाता है, स्वामी दयानन्द ने राम, कृष्ण आदि की मूर्तियों को......लगवाये तो स्वामी दयानन्द के चेले महाशय बुद्धदेव ने स्वामी दयानन्द की तसवीर को जूते लगाने में गुरु परम्परा को ही पूरा किया है। लायक गुरु के लायक चेले होवे हैं और इसके विरुद्ध जो होता है वह पाठकवृन्द खुद समझ लें।"

पं० बुद्धदेव के पिता की 'त्राहि त्राहि'

['अर्जुन' (देहली) से]

लाहौर के म० कृष्ण की झूठ-बयानी

उन्होंने आर्यसमाजियों को हिंसा के लिये उकसाया

पं० बुद्धदेव के पिता का नारायणस्वामी के नाम पत्र

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० बुद्धदेव विद्यालंकार के पिता पं० रामचन्द्र जी ने आर्यसार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री० नारायण स्वामी की सेवा में निम्न पत्र लिखा है:—

श्रीमन्, नमस्ते

निवेदन यह है कि मेरे पुत्र पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने जो शास्त्रार्थ हैदराबाद में हाल ही में किया था उस के श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के चित्र के किस्से को लेकर आजकल बड़ा आन्दोलन चल पड़ा है। इस विषय में मेरी आप से सविनय यह प्रार्थना है कि बुद्ध से यह कार्य्य उचित हुवा है या अनुचित इस सम्बन्ध में मैं अपनी कोई सम्मति नहीं देना चाहता क्योंकि वह पक्षपात पूर्ण समझी जा सकती है। आप उचित कार्य्यवाही कर सकते हैं। परन्तु

महाशय कृष्ण जी ने ४ अगस्त सन् १९३५ के 'प्रकाश' में पृष्ठ ५ के स्तम्भ २, ३ में लिखा है:—

"हम वैदिक धर्म्मी हैं, हम अहिंसा के कायल होते हुवे भी म० गांधी की अहिंसा को नहीं मानते— बाज़ हालतों में हम हिंसा को ही अहिंसा समझते हैं। अहिंसा की पाबन्दी ब्राह्मणों के लिये है, क्षत्रियों के लिये नहीं। जहां ब्राह्मणों के लिये शस्त्र हाथ में लेना निषिद्ध है वहां 'क्षत्रियों के लिये शस्त्र न उठाना पाप है'। लेकिन महात्मा गांधी ऐसा नहीं मानते। वह प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक मनुष्य के लिये अहिंसा ही आवश्यक समझते हैं। लेकिन उन्हें भी इस्तस्ना से काम लेना पड़ा है। चन्द साल हुवे उन्होंने अपने अखबार में लिखा था कि अगर कोई दुष्ट मेरे लड़के के सामने मुझ पर दस्त-दराज़ करे और मेरा लड़का उस अपराध के लिये उस दुष्ट को दण्ड दे तो मैं उसे कसूरवार नहीं समझूंगा, बरखिलाफ इसके उसे कसूरवार समझूंगा अगर वह मेरा अपमान देखकर भी खामोश रहे। म० गांधी के लड़के के लिए ऐसी हालत में अगर खामोश रहना पाप है तो उन लोगों के लिये खामोश रहना कितना बड़ा पाप होगा जो म० गांधी को अपने पिता से ज्यादा श्रद्धा और पूजा का पात्र समझते हैं। इसी तरह अगर अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी अपने लड़के के लिये हिंसा का प्रयोग जायज समझ सकते हैं तो हम वैदिक धर्मियों के लिये जो कि महात्मा गांधी की अहिंसा को उनके अर्थों

में नहीं मानते अपने आचार्य का अपमान कितना असह्य होना चाहिये और मैं कह सकता हूँ कि है"।

मैंने अपने पुत्र को आर्यसमाज की सेवा करने के लिये गुरुकुल में दाखिल किया था। अब क्या ऋषि के चित्र के साथ इस प्रकार के व्यवहार के सम्बन्ध में केवल मत-भेद होने के कारण उसकी जान का खतरा होगा? क्या आर्यसमाजें और सार्वदेशिक सभा भी यह उचित समझती है कि इस अपराध में बुद्धदेव को कत्ल कराने के लिये मुसलमानों की तरह एक प्रमुख आर्य अखबार आर्यों को उकसावे। यदि नहीं तो मेरी प्रार्थना है कि महाशय कृष्ण जी से इस विषय में सभा जवाब तलब करके उचित कार्यवाही करे।

एक और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि १८ अगस्त के प्रकाश के छठे पृष्ठ पर २य स्तंभ में महाशय कृष्णजी ने मेरे विषय में भी यह लिख डाला है कि "पता चला है कि पं० बुद्धदेव के पिता ने भी इस फेल को सख्त नापसन्द किया है।"

मैंने इस विषय में अपनी संमति किसी को भी नहीं दी। फिर न जाने इस प्रकार का झूंठा और निराधार लेख उन्होंने क्यों लिखा।

अब अन्त में मेरा यही निवेदन है कि मुझे मेरे इस बुढ़ापे में मेरे पुत्र को कत्ल कराने के लिये अपने अखबार में जो महाशय कृष्णजी ने आर्यों को उकसाने का लेख लिखा है उसे

पढ़ कर मेरी आत्मा बहुत दुःखी है, इसका ख़याल सारे आर्य्य-सामाजिक सज्जनों को होना चाहिये।

भवदीय—

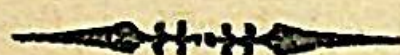
रामचन्द्र इंगलिश टीचर

२१ अगस्त सन् १९३५ ई० गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

—:(:※:):—

पं० बुद्धदेव जी का आत्मसमर्पण

('अर्जुन' (देहली) २१ अगस्त सन् १९३५ से)



दयानन्द बनाम दयानन्द की मूर्ति

पं० बुद्धदेव विद्यालंकार का स्पष्टीकरण

—※:○:※—

(पं० बुद्धदेव जी को लेकर इस समय आर्य्यजगत् में विशेषतया पञ्जाब के आर्य्यजगत् में जो विवाद चल रहा है उस के सम्बन्ध में वास्तविक घटना, उस के औचित्यानौचित्य तथा अपनी स्थिति पर प्रकाश डालने के लिये पंडित जी ने निम्न वक्तव्य प्रकाशनार्थ भेजा है जिसे हम सवांश में प्रकाशित कर रहे हैं। संपा०)



श्री सम्पादक जी, नमस्ते !

पञ्जाब के विचित्र वायु-मण्डल की कृपा से मैं इस समय एक भयङ्कर आन्दोलन का केन्द्र बना जा रहा हूँ। श्री नरदेव-

जी शास्त्री मुझ पर कुपित हुवे हैं और उन्हों ने लिखा है कि मेरे नाम के साथ 'श्री' लगाना भी उचित नहीं। उधर पञ्जाव में महाशय कृष्ण जी ने तो प्रजा को मुझे मृत्यु दण्ड तक देने के लिये प्रेरणा की है। इस अवस्था में आशा है कि आप मुझ पर इतनी कृपा अवश्य करेंगे कि मेरा वक्तव्य अपने पत्र में प्रकाशित कर देंगे। इस से पहिले कि मैं अपना वक्तव्य लिखूं मैं आवश्यक समझता हूँ कि घटना का स्वरूप आर्य जनता के सामने उपस्थित कर दूं।

यथार्थ घटना का वर्णन

मूर्त्तिपूजा का शास्त्रार्थ चल रहा था। इसमें पं० माधवाचार्य जी ने आर्यसमाज पर यह आरोप किया कि आप लोग भी तो उस्तरा, जूता, ऊखल, पटेला आदि की पूजा करते हैं, ऊखल पर अन्न चढ़ाते हैं। मैंने इन सब क्रियाओं की व्याख्या करते हुए कहा कि यह तो इन क्रियाओं की यथार्थ व्याख्या है। परन्तु इससे भी सरल रीति से इसका निर्णय करना हो तो मैं एक ओर जूता लेकर खड़ा हो जाता हूं, दूसरी ओर आप लेलें। मैं उस्तरा, ऊखल, जूते आदि पर प्रहार करूंगा, आप शिवलिंग पर कर दीजिये। पता लग जायगा कि हम मूर्त्ति-पूजक हैं वा आप। इस पर सनातनधर्मी पं० ने कहा कि अच्छा ऊखल-मूसल को तो आप जूता मार देंगे किन्तु क्या ऋषि दयानन्द के चित्र पर भी जूता मार देंगे? मैंने उत्तर दिया कि यह मेरे गुरु का चित्र है, मैं इसका उचित आदर

करता हूँ और यदि कोई विरोधी अपमान करने के उद्देश्य से इस पर प्रहार करे तो मैं उससे लड़ूंगा भी; किंतु इस समय प्रजा में भ्रम फैलाने के निमित्त आप ऐसी बात कह रहे हैं तो प्रजा के भ्रम-निवारणार्थ मैं यह कठोर कर्तव्य भी पालन कर लूंगा। इस पर सनातनधर्म सभा की ओर से नियत प्रधान श्री वामन नायक जी ने मूर्तिपूजा की रक्षा के लिये माधवाचार्य जी को चित्र मेरी ओर भेजने से रोक दिया। जब मेरी बारी आई तो मैंने उत्तर देना आरम्भ किया। जब इस प्रश्न के उत्तर देने का समय आया तो मेरे पास एक पुस्तक थी जिस पर ऋषि का चित्र था। पुस्तक मेज पर पड़ी थी और मैं मेज पर खड़ा होकर बोल रहा था। मैंने अपना पैर उस चित्र पर रख दिया।

उसके पश्चात् नियत समय तक शास्त्रार्थ होता रहा। उसके पीछे चार दिन तक श्री देवेन्द्र जी के तथा मेरे व्याख्यान हुए जिनमें अन्तिम दिन मेरा व्याख्यान था। पहिले दिन कुछ आर्य भाइयों को मेरा कार्य किसी अंश तक अखरा, किन्तु अन्तिम दिन जब मैं वहां से चला तो जनता में किसी प्रकार का असन्तोष न था। यह तो यथार्थ घटना है अब मैं अपना वक्तव्य उपस्थित करता हूं।

औचित्यानौचित्य

इस घटना पर विचार के लिये मैं प्रश्न को दो भागों में बांट लेता हूँ। पहिला विचार तो यह है कि किसी महापुरुष

की मूर्ति के साथ किसी भी अवस्था में ऐसा व्यवहार किया जा सकता है वा नहीं जो आपाततः अपमान जनक प्रतीत हो, परन्तु वास्तव में कर्त्ता का अभिप्राय अपमान का बिलकुल न हो ?

दूसरा विचार इस विषय पर आवश्यक है कि यदि किन्हीं अवस्थाओं में ऐसा व्यवहार युक्ति-संगत हो तो वह अवस्थायें हैदराबाद में उपस्थित थीं वा नहीं ?

अब मैं इस प्रश्न पर पहले दृष्टि बिन्दु से विचार करता हूँ और इस विचार में मैं अपनी ओर से कुछ न लिख कर ऋषि के ही शब्द उपस्थित करता हूँ।

(१) "जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़बुद्धि हो जाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आ जाता है।"

(सत्यार्थप्रकाश, ११ समुल्लास पृ० २०३)।

(२) "प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता, दूसरा पिता सत्कर्त्तव्य देव, तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है, चौथा अतिथि जो विद्वान् धार्मिक निष्कपटी सब की उन्नति चाहने वाला, पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये पत्नी पूजनीय हैं। ये पांच मूर्तिमान् देव जिसके संग से मनुष्य-देह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर प्राप्ति होने की सीढ़ियां हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्त्ति पूजते हैं वे अतीव पामर नरकगामी हैं। (प्रश्न) माता पिता आदि की

सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं ? (उत्तर) पाषाणादि मूर्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और माता आदि मूर्तिमानों की सेवा करने में ही कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ अदेव पाषाणादियों में सिर मारना।"

(सत्यार्थप्रकाश ११ समुल्लास पृ० २०४)

"विद्वानों से भिन्न पाषाणादि की मूर्तियों को न माने न मनवावे। वैसे ही गृहस्थियों को माता पिता, आचार्य, अतिथि, स्त्री के लिये विवाहित पुरुष और विवाहित पुरुष के लिये विवाहित स्त्री की मूर्ति से भिन्न किसी की मूर्ति को पूज्य न समझे।"

(संस्कारविधि पृ० २६६, संन्यासाश्रम के वर्णन का अग्रभाग)

"उन्हीं विद्वानों माता पिता आचार्य अतिथि न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन पतिव्रता स्त्री और स्त्री-व्रत पति का सत्कार करना देव-पूजा कहाती है। इसके विपरीत अदेव-पूजा। इनकी मूर्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि की मूर्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य सं २१)

"जीते माता पिता आचार्य अतिथि और परमेश्वर को जो यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करता है उसको पंचायतनपूजा कहते हैं।"

(आर्योद्देश्य रत्नमाला रत्न ६४)

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि ऋषि चेतन की पूजा मानते हैं, जड़ की नहीं। अब यदि कोई कहे कि ईश्वर के स्थान में किसी और की पूजा निषिद्ध है सो भी नहीं। ऋषि तो विरक्त योगियों तक की मूर्ति के विरुद्ध हैं। वे तो जैनियों की मूर्तियों का भी खण्डन करते हैं जो ईश्वर को मानते ही नहीं। देखिये ऋषि क्या लिखते हैं:—

(प्रश्न) जैसे स्त्री का चित्र या मूर्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है वैसे साधु और योगियों को देखने से शुभ गुण प्राप्त होते हैं। (उत्तर) जो पाषाण आदि मूर्तियों को देखने से शुभ परिणाम मानते हो तो उसके जड़त्वादि गुण भी तुम्हारे में आ जावेंगे, जब जड़बुद्धि होंगे तो सर्वथा नष्ट हो जाओगे।

(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १२)

अब यदि कहें कि पूजा का अर्थ धूप दीप आदि चढ़ाना है सो भी नहीं। मुसलमान मस्जिदों को न ईश्वर मानते हैं, न उसे धूप दीप चढ़ाते हैं, न उसके सामने सिर झुकाते हैं, केवल नमाज़ के समय उस ओर मुख करते हैं। देखिये इस विषय में ऋषि क्या लिखते हैं:—

(उ०) निश्चय हम तेरे मुख को आसमान में फिरतो देखते हैं अवश्य हम तुझे उस किबले को फेरेंगे कि पसन्द करे उसको बस अपना मुख मसजिदुलहराम की ओर फेर जहां कहीं तुम हो अपना मुख उसकी ओर फेरलो। म० १ सि० २ सू० २ आ० १३५।

समीक्षक— क्या यह छोटी बुतपरस्ती है ? नहीं बड़ी। (पूर्वपक्षी) हम मुसलमान लोग बुतपरस्त नहीं हैं किन्तु बुतशिकन अर्थात् मूर्तियों को तोड़नेहारे हैं क्योंकि हम किबले को खुदा नहीं समझते (उत्तरपक्षी) जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन-उन मूर्तियों को ईश्वर नहीं मानते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि बुतों के तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद किबले बड़े बुत को क्यों न तोड़ा ? (पूर्वपक्षी) वाह जी! हमारे तो किबले की ओर मुख फेरने का कुरान में हुक्म है और इनके वेद में नहीं है। फिर वे बुतपरस्त क्यों नहीं ? और हम क्यों ? क्योंकि हमको खुदा का हुक्म बजाना अवश्य है। (उत्तरपक्षी) जैसे तुम्हारे लिये कुरान में हुक्म है वैसे ही इनके लिये पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम कुरान को खुदा का कलाम समझते हो वैसे ही पुराणी पुराणों को खुदा के अवतार व्यास जी का वचन समझते हैं। तुम में और इनमें बुतपरस्ती का कुछ भी भिन्न-भाव नहीं है, प्रत्युत तुम बड़े बुतपरस्त और ये छोटे हैं क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे, तब तक उसके घर में ऊंट प्रविष्ट होजाय वैसे ही मुहम्मद साहब ने छोटे बुत को मुसलमानों के मन से निकाला परन्तु बड़े बुत जो कि पहाड़ सदृश मक्के की मस्जिद है वह सब मुसलमानों के मन में प्रविष्ट करादी। क्या यह छोटी बुतपरस्ती है ? हो, जो हम लोग वैदिक हैं वैसे ही तुम लोग भी वैदिक होजाओ तो बुत-

परस्ती आदि बुराइयों से बच सको, अन्यथा नहीं। तुमको जब तक अपनी बड़ी बुतपरस्ती को न निकाल दो तब तक एक दूसरे छोटे बुतपरस्तों के खंडन से लज्जित होकर निवृत्त रहना चाहिये और अपने को बुतपरस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिये"॥ ३० ॥

मेरी कैफियत

यह उदाहरण अति स्पष्ट हैं और यदि इनका बिल्कुल अक्षरार्थ लिया जाय तब तो घरों में ऋषि दयानन्द का चित्र भी न लगाना चाहिये। परन्तु मैं ऐसी दुराग्रहपूर्ण स्थापना की शरण नहीं लेना चाहता। ऋषि दयानन्द न चित्रकला के शत्रु थे न वीरपूजा के, और न मैं ही इन दोनों का शत्रु हूँ। मेरे घर में भी ऋषि दयानन्द का चित्र है। ऋषि के लिये मेरे हृदय में क्या भावना है यह वही बता सकते हैं जिनका मेरे साथ दिन रात का व्यवहार है। सच तो यह है कि मैंने जो कुछ किया, किया ही ऋषि की भक्ति से प्रेरित होकर। यदि कविता की भाषा में बोलना हो तो मैं कह सकता हूँ कि मानो ऋषि मुझ से कह रहे थे कि शाबास, तूने मुझ में और मेरी मूर्ति में भेद समझा है। यह मूर्ति तो मेरी कागज़ की मूर्ति है, किन्तु मूर्तिपूजा का खण्डन तो मैं स्वयं हूँ, तूने मेरी

रक्षा के लिये मेरी कागज़ की मूर्ति की परवाह न की, इसलिये तू मेरा प्रिय शिष्य है।

परन्तु मैंने कहा कि मैं न चित्र का शत्रु हूँ, न वीरपूजा का। किन्तु जहां घर में लगे हुए ऋषि के चित्र से लाभ उठाना मैं पाप नहीं समझता वहां जनता के भ्रमनिवारणार्थ उस पर असाधारण अवस्थाओं में पैर रखने में पाप भी नहीं समझता।

एक दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जायगी। राजपूतों के सामने मुसलमान लोग गौवों का झुण्ड अपने बचाव के लिये रख देते थे और उस समय राजपूत लोग अपने प्राण गंवा देते थे। आर्य्यसमाज ने आज तक सहस्र वार चिल्ला कर इस का प्रतिवाद किया है। अब कल्पना कीजिये कि आर्य्यों को किसी सेना के सामने यही अवस्था उपस्थित होजाय और उन्हें विजय लाभार्थ सामने खड़ी हुई गौवों को वध करना पड़े तो क्या आप उन आर्यों को गौहत्यारा कहेंगे? यदि कहेंगे तो हर एक समझदार आर्य यही कहेगा कि मुसलमानों द्वारा होने वाली लाखों गौओं के वध से बचाने के लिये यदि हमें कुछ गौवों पर प्रहार करना पड़ा तो हम गौ-रक्षक हुए, गौ हत्यारे नहीं। इसी प्रकार का संकट मेरे सामने था। ऋषि का चित्र उस दिन ऋषि से लड़ने आया था। मैं ने दयानन्द और दयानन्द के चित्र की लड़ाई में दयानन्द का साथ दिया।

कई लोग कहते हैं कि हम मानते हैं कि बुद्धदेव के हृदय में ऋषि की भक्ति है, किन्तु किसी पोते को दादा की गोद में बैठ कर दादा की दाढ़ी उखाड़ने का अधिकार नहीं, चाहे उस की दादा में कितनी भक्ति क्यों न हो। मेरा निवेदन है कि यह दृष्टान्त विषम है। मैंने ऋषि के साथ कोई बालक्रीड़ा नहीं की। यदि दृष्टान्त ही लेना हो तो दृष्टान्त यह है कि यदि मेरे दादा पानी में डूब रहे हों और उन को बचाते समय उनकी चोटी या दाढ़ी ही मेरे हाथ में पड़ जाय और उसी के सहारे यदि मैं उन्हें बाहर ला सकूं तो क्या मुझे दादा के अपमान का प्रायश्चित्त करना होगा?

अब प्रश्न यह है कि क्या हैदराबाद में ऐसी अवस्था थी? इसका उत्तर यही है कि हैदराबाद की जनता ऐसा संकट न समझती तो सबसे पहले यह आंदोलन हैदराबाद से उठता। हैदराबाद के लोग न तो नपुंसक हैं और न मूर्ख हैं फिर भी वह चुप थे तो इस लिये कि वह स्थिति को समझते थे। यदि वह न समझते तो इस घटना के पश्चात् हैदराबाद में मेरा व्याख्यान भी न होसकता। यह आंदोलन उठा भी हैदराबाद में नहीं है। यह उठा लाहौर से—इसी से समझा जा सकता है कि जो लोग इस समय मेरे विरुद्ध आंदोलन कर रहे हैं वे वस्तु-स्थिति को नहीं समझ रहे।

यदि सच पूछें तो इस स्थिति को समझ ही वे सकते हैं

जिन्हें कभी शास्त्रार्थ करना पड़ा हो। जब दिल्ली में आर्य-समाज चावड़ी बाजार के साप्ताहिक सत्संग में शास्त्रार्थमहारथियों के शिरोमणि रामचन्द्र देहलवी से इस विषय में प्रश्न किया गया तो उन्होंने भी यह कहा कि शास्त्रार्थ के संकट में ऐसा प्रसंग पड़ने पर चित्र को फाड़ तो मैं, भी देता।

सा० दे० सभा की अन्तरंग सभा की व्यवस्था

इधर सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा ने यह व्यवस्था दी है कि मेरा कार्य धर्मविरुद्ध, नीतिविरुद्ध, राजनियम-विरुद्ध तथा शिष्टाचारविरुद्ध। सार्वदेशिक सभा के निर्णय के विषय में मेरा इतना ही निवेदन है कि यह अधिवेशन ११ अगस्त को हुआ और इस में उपस्थित होने की सूचना मुझे १२ अगस्त को शिमले में मिली। सार यह कि इसमें सरकारी वकील अर्थात् महाशय कृष्ण जी अपने दल बल सहित उपस्थित थे, यदि नहीं था तो बेचारा अभियुक्त। संसार भर के न्यायालयों में हत्या के अपराधी तक को अपनी सफाई उपस्थित करने का अधिकार होता है, परन्तु यहां मेरी उपस्थिति आवश्यक न समझी गई। मुझे सूचना मिली या न मिली इसकी भी प्रतीक्षा न की गई और निश्चय कर दिया गया। इस अवस्था में इस निर्णय को मानने के लिये मैं कहां तक बाधित हूँ इसका निर्णय मैं माननीय न्यायाधीशों पर ही छोड़ देता हूँ।

रहा मेरा भविष्य में कर्तव्य, सो इस विषय में मैं समाचार-

पत्रों में अपने लेख द्वारा घोषणा कर ही चुका हूँ कि भविष्य में मुझे इस कार्य को दोहराने की आवश्यकता ही न होगी। पंजाब प्रतिनिधि सभा के प्रधान जी की मुझे आज्ञा भी है कि मैं भविष्य में ऐसा न करूं, इसलिये मैं शासन व्यवस्था से भी बाधित हूं। परन्तु फिर भी मेरे विरुद्ध आंदोलन उठता ही जा रहा है। यह कहां तक उचित है, आर्यजनता विचार ले।

सार्वदेशिक की अन्तरङ्ग सभा के निर्णय के विषय में मेरा निवेदन है कि वे मेरे व्यवहार को नीतिविरुद्ध, शिष्टाचारविरुद्ध कह सकते हैं परन्तु मेरा वक्तव्य भी मेरी उपस्थिति में उन्हें सुनना चाहिये। साथ ही मेरा कार्य धर्मविरुद्ध है यह निर्णय करने का उन्हें अधिकार नहीं। यह धर्मार्य सभा का काम है। इस अवस्था में ऐसा निर्णय करके माननीय सभासदों ने जो भूल की है उसकी भयंकरता को विद्वान् लोग ही समझेंगे और उनमें भी विशेष कर वे लोग जिन्हें शास्त्रार्थ करने पड़ते हैं।

गृह-कलह

अब रही गृह-कलह की बात। सो इस ओर से आर्य-जनता निश्चिन्त रहे। यदि जनता का बहुपक्ष मेरे कार्य को आर्य-सिद्धान्त के विरुद्ध समझेगा तो मुझे अपना कर्तव्य न जानने में देर लगेगी, न पालने में।

आपका—

बुद्धदेव विद्यालंकार

—— :❀: ——

आचार्य्य जी का शान्तिपाठ

('श्री वेङ्कटेश्वर-समाचार' बम्बई २५ अक्टूबर सन् १६३५ से)



जूता-काराड और उसके बाद !

(शास्त्रार्थ-महारथी पं० माधवाचार्य्य शास्त्री का स्पष्टीकरण)



पिछले दिनों दक्षिण हैदराबाद में मूर्तिपूजा के शास्त्रार्थ में म० बुद्धदेव विद्यालंकार समाजी ने स्वा० दयानन्द के चित्र पर लात जमाई थी। इस घटना को लेकर प्रायः सभी समाचार पत्रों में अभी तक खासी चखचख चल रही है संयोगवश यह शास्त्रार्थ मैं ही कर रहा था इस लिये इस घटना के साथ मेरा भी विशिष्ट सम्बन्ध है। इधर समाचार पत्रों में कुछ भ्रामक बातें छप रही हैं जिन का निराकरण करना आवश्यक सा हो गया है। साथ ही बहुत से मित्रों ने इस घटना का वास्तविक स्वरूप जानने के लिये पत्र लिखे हैं जिन का पृथक् २ उत्तर देना मेरी शक्ति से बाहर है। ऐसी स्थिति में यही उचित जान पड़ता है कि समाचार पत्रों द्वारा वास्तविक घटना का स्पष्टीकरण करूं। आशा है सम्पादक महोदय अपने अपने पत्रों में इन पंक्तियों को स्थान देकर भ्रान्त जनता को पथ्य तक पहुंचाने में मेरा हाथ बटायेंगे।

जूताकाण्ड का प्रसङ्ग किसने आरम्भ किया ?

जब मैंने दयानन्दकृत ग्रन्थों से छुरे पटेले आदि की पूजा प्रार्थना का प्रश्न उपस्थित किया तो उत्तर में बुद्धदेवजी ने कहा कि— "मूर्तिपूजक कौन है ?- इसका निर्णय तो सहज में ही हो सकता है, एक ओर जूता पकड़ कर मैं (बुद्धदेव) खड़ा होता हूँ और जो वस्तु हमारी उपास्य बताई जाती हैं उनको मारता हूं, दूसरी तरफ पंडितजी भी ऐसा करके दिखायें"— महाशयजी की इस उक्ति पर मैंने कहा— "अच्छा होता यदि महाशयजी इस प्रकार की अशिष्ट चर्चा आरम्भ न करते। हमतो किसी भी मूर्ति की शान में ऐसे शब्द भी गवारा नहीं कर सकते। परन्तु आप ऐसी परीक्षा देने के लिये आग्रहपूर्वक उतावले हो रहे हैं सो हम परीक्षा कर देखते हैं, क्या आप दयानन्दजी के चित्र के साथ ऐसा व्यवहार कर सकते हैं ? यदि हां तो प्रति जूता एक रुपया पुरस्कार भी दिया जायगा; कर दिखाइये।" इस पर म० बुद्धदेवजी ने कहा— "हां हां लाइये मैं तय्यार हूँ।'

ज्यों ही हमारी ओर से चित्र भेजा जाने लगा त्यों ही स० ध० के सभाध्यक्ष ने प्रार्थनापूर्वक ऐसा करने से रोका। आर्य्य-समाज के सभाध्यक्ष ने भी इसका समर्थन किया। इस तरह यह काण्ड यहीं समाप्त होगया। परन्तु म० बुद्धदेव ने अपनी टर्न में किसी को कानों-कान खबर न होने दी और चुपके से अपनी ही किसी पुस्तक में से निकाल कर स्वामी जी का

चित्र मेज पर रक्खा और यह कहते हुए कि "लीजिये स्वामी-जी की मूर्ति को जूता मारता हूं"– धम से लात जमादी। यह इस घटना का वास्तविक स्वरूप है। स्वयं बुद्धदेव जी ने भी अपने स्पष्टीकरण में यह बात इसी रूप में स्वीकार की है। इस से स्पष्ट है कि जूते की बातचीत मैंने आरम्भ नहीं की थी बल्कि स्वयं म० बुद्धदेव ने ही इस प्रसङ्ग को आरम्भ किया था। हां, प्रत्यालोचना के प्रसङ्ग में मैंने इस बात को दुहराया अवश्य था जो कि तात्कालिक परिस्थिति को देखते हुए मेरे लिये परमावश्यक था। इतने स्पष्ट मामले में भी जो आर्य्य-समाजी मुझ पर यह दोष लगाना चाहते हैं कि– पं० माधवा-चार्य्य ने ही बुद्धदेवजी को अपनी चाल में फांस कर स्वामीजी को जूते लगवाये हैं– वे कितना अनर्थ करते हैं? इस पर 'हिन्दी मिलाप' पूछता है कि स्वामीजी के चित्र पर जूता मारने से कितने सनातनी आर्य्यसमाजी बन गये? सो इसका उत्तर स्पष्ट है कि जूता मारने पर समाजी बन जाने की शर्त नहीं थी। बल्कि फी जूता एक रुपया इनाम देने की व्यवस्था थी जो उसी समय पूरी करदी गई और भविष्य में भी पूरी की जा सकती है।

औचित्यानौचित्य।

महाशय कृष्ण का दल इस काण्ड को अतीव अनुचित ठहरा रहा है, आर्य-प्रतिनिधिसभा पंजाब और सार्वदेशिक सभा ने म० बुद्धदेवजी के प्रतिकूल फतवा दे दिया है। उधर

'आर्य्यवीर' और 'अर्जुन' आदि इस कार्य्य को सिद्धान्त-रक्षा का अन्यतम उपाय कह कर समर्थन कर रहे हैं। रस्साकशी ज़ोरों पर है। परन्तु इस संघर्ष का मूल कारण दोनों दलों ने ही अभीतक नहीं समझ पाया है। हमारी सम्मति में यह जज़्बात और खयालात का द्वन्द्व-युद्ध है। मानव-हृदय अपने प्रेमी की प्रत्येक वस्तु से प्रेम करना चाहता है, चित्र भी चित्रवान् का अभिन्नभात्रमय स्वरूप है जिसे देखते ही तत्सम्बद्ध अनन्त चरित्रों का अथाह सागर पलक-झलक में हमारी भावना की संक्षिप्त किन्तु दुष्पूर गागर में अलक्षितरूप से समा जाता है। जिससे हृदय बल्लियों उछलने लग जाता है। इसके प्रतिकूल जब कोई जीवट जीव हमारे उस भावमय कलेवर को ठुकराते हुए अपनी हृदय-हीनता प्रकट करता है तो स्वभावतः हमारे हृदय में मूकवेदना उत्पन्न होती है। मनोविज्ञानवेत्ता इस मानसिक प्रगति को 'जज़्बात' के नाम से याद करते हैं। म० कृष्णपार्टी के आन्दोलन का मूल कारण वह 'जज़्बा' जो कि इस पार्टी में अपने पूज्यतम स्वामी दयानन्द के प्रति लम्बे अर्से से घर कर गया है। ज़ज़्बात को तर्जीह देने की दशा में बुद्धदेव जी का यह कार्य्य अवश्य ही अनुचित प्रतीत होता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या म० कृष्णपार्टी मानव जज़्बात की कदर करना सीख गई है ? यदि हां, तो इस अपमानजनक घटना से सम्मान-जनक भावों की इतिकर्तव्यता का रहस्य भी तो स्वीकार कर लीजिये। यदि

मूर्ति पर जूता मारने से स्वामीजी का अपमान हुआ है तो राम-कृष्णादि अवतारों की मूर्तियों पर पुष्पादि अर्पण करने से उनका सम्मान क्यों न होगा ? न्यायशास्त्र के व्याप्तिसिद्धान्त के अनुसार तो जो-जो क्रियाएं अमुक के लिये अपमान सूचक होंगी तद्विरुद्ध क्रियाएं अवश्य ही सम्मान-बोधक होनी चाहियें।

समाजी-पत्रों का हलकापन।

जब से यह शास्त्रार्थ हुआ है तब से समाजी समाचारपत्रों ने येन केन प्रकारेण मेरे प्रतिकूल ओछे आक्रमण करना अपना ध्येय बना लिया है; चुनांचे तारीख १३-८-३५ के 'हिन्दी-मिलाप' में 'चित्र पर जूता' शीर्षक टिप्पणी कसते हुए न केवल इस घटना का उत्तरदायित्व मुझ पर थोपने का प्रयास किया है बल्कि मुझे अतीव अशिष्ट शब्दों में याद किया गया है। हम अपनी ओर से कुछ न लिखते हुए 'गुम्बद की सदा' की तरह उक्त पत्र के शब्दों को ही सविशेषणरूप से वापिस कर देना चाहते हैं। कल यदि म० खुशहालचन्द जैसे व्यक्ति यह कहें कि वास्तव में माधवाचार्य्य ने ही स्वामी दयानन्द के जूते लगाये हैं तो यह कहां तक न्याय होगा।

इसी बदनाम पत्र ने ता० १६-८-३५ के अङ्क में मुझे 'माधवाचार्य्य' के बजाय 'माधवाचारज' लिखने का पतित प्रयास किया है और वह इस लिये कि कुछ अपरिचित व्यक्ति मुझे गौड़ ब्राह्मण के बजाय 'अचारज'='महाब्राह्मण' समझने

की भूल कर बैठें और इस तरह मेरी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को हानि पहुँचे। उक्तपत्र के इस लेख की इस ग़लतबयानी के पाप की मात्रा तब और बढ़ जाती है जब कि हम यह जानते हैं कि 'मिलाप' के सम्पादक को यह बात भलीभांति विदित है कि मैं (माधवाचार्य्य) आदिगौड़ब्राह्मणवंशज हूं एवं श्रीविशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार 'आचार्य्य' पदवी का धारण करनेवाला हूं। समाजी पत्रों के वर्तमान रवैये से यह बात सर्वथा स्पष्ट होजाती है कि समाजी मेरे शास्त्रार्थों से इतने तंग आगये हैं कि अब वे शास्त्र और युक्तियों के बल से मुक़ाबला करने में असमर्थ हैं, अतः एक झूठे लेख लिख कर मुझे बदनाम करने के लिये ओछे हथियारों पर उतर आये हैं। ध्यान रहे, वे इस पैंतरे में भी सफल न हो सकेंगे, क्योंकि ऐसी मिथ्या बातों से न तो जनता मुझे बुरा समझ सकती है और न ही स्वामी दयानन्द का कापड़ी खानदान में पैदा होना छिप सकता है।

निवेदक- माधवाचार्य्य,

मु० पो० कौल,

जिला-करनाल।



मीरपुरी की मूर्खता

—:(:):—

'हिन्दी मिलाप' लाहोर १ सितम्बर सन् १६३५ में इस जूताकाण्ड को लेकर म० बुद्धदेव मीरपुरी ने भी पांच सवारों में अपनी गणना होजाने के लिये एक तुन्दिल किन्तु मूर्खता-पूर्ण लेख लिखा था आप उचरते हैं कि:—

'मूर्तिपूजा के विषय पर शास्त्रार्थ में जब पौराणिक पंडित वेदशास्त्र युक्ति से मूर्तिपूजा को सिद्ध नहीं कर सकते तब अपने पराजय को सूचित करने वाली यह युक्ति पेश करते हैं कि यदि आर्य्यसमाजी मूर्तिपूजा को नहीं मानते तब वह ऋषि दयानन्द की मूर्ति से अनिष्ट व्यवहार करें। इस पर कोई आर्य्यविद्वान् इनके जाल में आकर ऐसा व्यवहार करते हैं जो उचित नहीं।

कुछ लोग इसकी पुष्टि कर रहे हैं कि ऋषि दयानन्द की मूर्ति पर भरी सभा में पाद प्रहार करना सिद्धान्तानुकूल कार्य्य है। ......मेरे विचार में किसी महापुरुष की मूर्ति वा चित्र के साथ उपानह प्रहार वा पादप्रहार अत्यन्त अनुचित है।

हम स्वामीजी से पूछना चाहते हैं कि हैदराबाद के इस शास्त्रार्थ में जूते पैजार की बात पौराणिक पण्डित ने आरम्भ की थी अथवा स्वयं दयानन्दियों ने? जूता मारने वाले

पं० बुद्धदेवजी के स्पष्टीकरण में यह वात स्पष्टतया दर्ज़ है कि जूताकाण्ड का आरंभ स्वयं महाशयों की तरफ से हुवा था। ऐसी स्थिति में स्वामीजी के ही कथनानुसार ऐसी अशिष्ट चर्चा करने वाले समाजी ही युक्ति प्रमाणों से अपना पक्ष सिद्ध करने में असमर्थ रहे यह सुस्पष्ट है।

आगे चल कर आप लिखते हैं कि:- 'कोई आर्य्यविद्वान् इन (सनातनधर्म्मियों) के जाल में आकर ऐसा व्यवहार करते हैं जो उचित नहीं' कहिये! स्वामीजी सन् १९२६ में सनातनधर्म्म कान्फ्रैंस मुलतान के समय सहस्रों मनुष्यों के सामने आपने जो 'मैंने आर्य्यसमाज क्यों छोड़ा' विषय पर डेढ़ घन्टा तक व्याख्यान दिया और समाज की अनेक बुराइयें प्रकट करते हुवे सनातनधर्म्म की शरण में आने का ऐलान किया था। पश्चात् श्रीमती के धमकाने और तनख्वाह चन्द रुपये वढ़ जाने पर पुनः अपनी आत्मा को समाज के हाथों वेच डाला था आपने यह सब कार्य्य किस सनातनधर्म्मी के जाल में आकर किया था? इसके अतिरिक्त ९ अगस्त सन् १९३५ को वुधलाडामण्डी (जिला हिसार) के शास्त्रार्थ में आपने निरुत्तर होकर अपने मुंह पर स्वयं ही आधा दर्जन तमाचे किस सनातनधर्म्मी के जाल में फंस कर तड़ातड़ जमाए थे?

अभी २ मई सन् १९३६ को वटाला (जिला गुरदासपुर) के शास्त्रार्थ में पं० मुकुन्दकान्त मालवीय की विद्यमानता में हजारों मनुष्यों के समक्ष आपने निरुत्तर होकर स्वा० दयानन्द

की वनाई संस्कारविधि को दियासलाई क्यों लगाई थी ?

वास्तव में पं० माधवाचार्य्य शास्त्री के सामने तुम्हारी कुछ भी चालाकी नहीं चल पाती और आचार्य्य जी के युक्ति प्रमाणों के जाल में ऐसे फंसते हो कि 'किं कर्तव्य विमूढ' होकर स्वयं ही 'ऐसा व्यवहार' कर वैठते हो ?

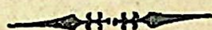
जान बची और लाखों पाए

'अर्जुन' (देहली) से—

—:❀:—

उन्तीस सितम्बर को सार्वदेशिक आर्य्य-प्रतिनिधिसभा की अन्तरंग सभा का अधिवेशन हुआ जिसमें पं०बुद्धदेव जी का वक्तव्य भी सुना और पुनर्विचार के वाद निश्चय किया कि पं०बुद्धदेव जी का कार्य्य धर्म्म के विरुद्ध नहीं था अपितु शिष्टाचार के ही विरुद्ध था। पहले प्रस्ताव में सभा ने पं० बुद्धदेव जी के लिए प्रायश्चित्त की व्यवस्था दी थी, पुनर्विचार के पश्चात् सभा ने उसे भी उड़ा दिया है। हम पं० बुद्धदेवजी को वधाई देते हैं कि वह प्रायश्चित्त के विना ही शुद्ध मान लिये गये हैं। सभा इस भूल-सुधार के लिये धन्यवाद की पात्र है।

शास्त्रार्थ-फल-निर्णय



उभयपक्ष की सम्मति के अनुसार शास्त्रार्थ के व्यवस्थापक और निर्णायक-प्रधान आर्य्यसमाज के प्रसिद्ध नेता श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ (ज्वालापुर महाविद्यालय हरिद्वार) नियत हुवे थे जैसा कि इस पुस्तक के पृष्ठ ११-१२ पर अङ्कित पांचवें और उन्नीसवें नियम में लिखा है। परन्तु कारणवशात् आप नहीं आसके, तथापि जिन विषयों पर ये शास्त्रार्थ हुवे हैं उन विषयों पर उपर्य्युक्त शास्त्री जी के निर्णयात्मक उद्गार यत्र तत्र प्रकाशित होचुके हैं जिन्हें हम पाठकों के परिज्ञानार्थ यहां उद्धृत करते हैं शायद यह कहने की आवश्यकता न हो कि शास्त्रार्थ में उपस्थित हो सकने की दशा में शास्त्री जी अपने इन विचारों के प्रतिकूल कुछ व्यवस्था दे डालते— एक विशिष्ट विद्वान् की नियत पर ऐसा शक करना भी हमारे निकट तो गुरुतर अपराध है, परन्तु आर्य्यसमाज के लिये शास्त्री जी की यह निष्पक्ष राय कालकूट की घूट की तरह अवश्य ही सूट न करेगी तो भी एतावता समाजी सिद्धान्तों का लचरपन ढांपा नहीं जासकता अस्तु-

श्री पं० नरदेव शास्त्री की राय

जन्मप्रधान वर्णव्यवस्था

जो जिसके यहां उत्पन्न होता है वह अपने पूर्व जन्म के कर्म्मों के फलानुसार ही होता है। ......ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज आदि के यहां उत्पन्न होने से अवश्य ही उस परिस्थिति के जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त होते हैं ...शास्त्र भी जन्म सिद्ध अधिकार का निषेध नहीं करते ...जन्म से स्वभाव का घनिष्ठ सम्बन्ध है ...स्वभाव जन्म भर नहीं बदलता मरणपर्य्यन्त रहता है ...ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के उपनयन का भिन्न भिन्न काल, उनके लिये भिन्न भिन्न यज्ञोपवीतों तथा दण्डों का विधान गुरुकुल में जाने के पूर्व ही नाम के साथ शर्म्मा, वर्म्मा, गुप्त आदि उन २ जातिबोधक पदों का जोड़ना, क्या ये बातें जन्म को लेकर नहीं कही गई ?......

(आर्य्यसमाज का इतिहास ६५—७५)

पुराणों की वैदिकता

......पुराणों में बहुत तत्व की बातें हैं। पहिले पहिल मैं भी ऐसा ही समझता था कि 'पुराण रचना व्यर्थ है' किन्तु अब हमारा मत है कि वे लुप्त होजाएं तो धर्म्मप्राण हिन्दुओं का एक बड़ा खजाना लुट जाए। ...वेद बीज है और पुराण उसका विस्तार। पुराणों की उपेक्षा करना उनको त्याज्य कहना

अपनी मूर्खता का प्रमाणपत्र पेश करना है। ···हिन्दुत्व का हित वेदों और पुराणों के एकीकरण में है··· ।

('ब्राह्मण-सर्वस्व' पुराणाङ्क २०४-२०६)

दयानन्द कृत ग्रन्थों की अवैदिकता

···सत्यार्थप्रकाश को आर्य्यसमाजरूपी चर्च का बाइबल कह सकते हैं। परन्तु कहीं कहीं मूर्ख मण्डली में पांचवां वेद समझा जाने लगा है··· वाक्य रचना गोल है और सन्देहोत्पादक है, पढ़ने वाले सब प्रकार के अभिप्राय निकाल सकते हैं··· जिन लोगों के हाथों में स्वामी जी के ग्रन्थों के प्रकाशन का अधिकार है वे इस में संशोधन नहीं होने देते। ···सत्यार्थ-प्रकाश में उचित संशोधन किया जाय तो क्या हानि है? [स्वा० दयानन्द का वेदभाष्य] सन्तोषजनक नहीं। इस भाष्य को देख कर प्रायः अंग्रेजी पढ़े लिखे संशय सागर में पड़ जाते हैं, और इस अभिप्राय पर पहुँचते हैं कि वेदों में प्रकरणबद्ध कोई बात नहीं।

(आर्य्यसमाज का इतिहास १९३-१९५)

विजय-पत्र-

[जो कि हिज़ ऐक्सलेंसी, महाराजा बहादुर, सर, कृष्णप्रसाद बहादुर जी० सी० आई० ई० के जामाता श्रीमान् राजा ताराचन्द जी द्वारा प्रदान किया गया]—

सनातनधर्म्म सभा हैदराबाद दक्खन और आर्य्यसमाज के दर्म्यान ३ से ६ जुलाई सन् १९३५ तक वर्णव्यवस्था, पुराण,

दयानन्दकृत ग्रन्थ और मूर्तिपूजा इन मज़ामीन पर शास्त्रार्थ हुवे, जिनमें तकरीबन हर मज़हबो मिल्लत के आठ दश हज़ार असहाब शरीक हुवा करते थे आर्य्यों की तर्फ से महाशय बुद्धदेव जी वेदालङ्कार और महाशय देवेन्द्र जी सांख्यतीर्थ और सनातनधर्म्म की तर्फ से पं० माधवाचार्य्य जी शास्त्री शास्त्रार्थ करते थे जिनको मैंने वग़ौर सुना और समझा।

मेरी राय में सनातनधर्म्मी पण्डित ने समाजी विद्वानों के सवालात का बरजस्ता जवाब देते हुवे वेद शास्त्रों के हवालाज़ात के ज़रिये निहायत आलमाना बहस से अपने दावे को पाए सबूत पहुँचाया। चुनाचे इस मनाज़रा में जहां तक पब्लिक के ख़यालात का अन्दाज़ा लगा सकता हूं बकसरत मेरी राय से मुत्तफ़िक मालूम होती है।

पं० माधवाचार्य्य जी की तक़रीर में सबसे ज्यादह खूबी यह पाई गई है कि शान्ति, मुल्क व मालिक में अमन व चैन की तलक़ीन हुवा करती है।

राजा ताराचन्द



